प्लेटिनम जयंती विशेषांक

वर्ष | 06 | 2021

राजभाषा पत्रिका

धान

धान की उन्नतिः देश की प्रगति

भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान
कटक

वर्ष 06 2021
प्लैटिनम जयंती विशेषांक

राजभाषा पत्रिका

धान

धान की उन्नति: देश की प्रगति

भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु ने 13 अप्रैल 1948 को संस्थान की परिदर्शन के समय कहा था–

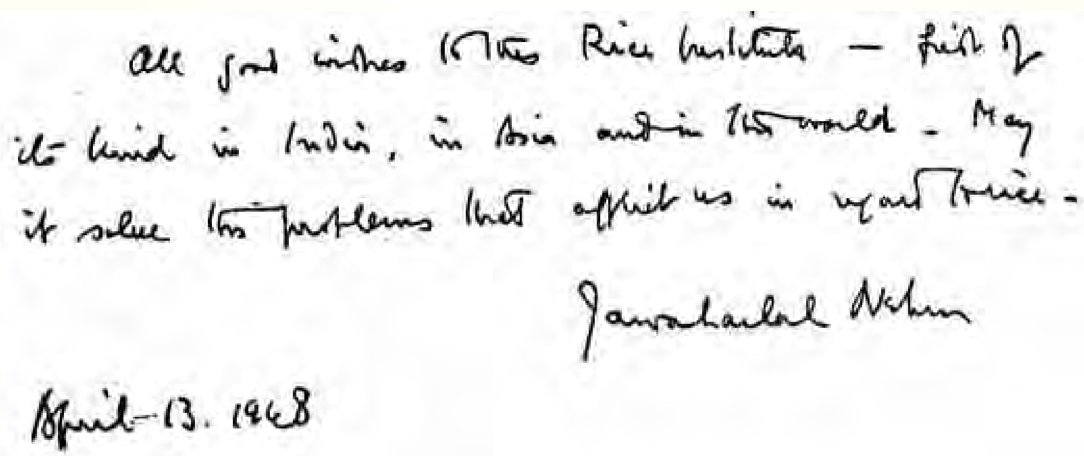

All good wishes to this Rice Institute — first of its kind in India, in Asia and in the world. May it solve the problems that afflict us in regard to rice.

Jawaharlal Nehru

April 13. 1948

"भारत में, एशिया में तथा पूरे विश्व में अपने ही प्रकार के प्रथम धान संस्थान को मेरी शुभकामनाएं। धान से संबंधित समस्याओं का यह समाधान करे।"

अप्रैल 13, 1948 — जवाहरलाल नेहरु

वर्ष 2021
प्लेटिनम विशेषांक

सरंक्षक एवं प्रकाशक

डॉ. दीपंकर माईती

निदेशक, राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान

संपादन मंडल

डॉ. जी ए के कुमार

डॉ. राहुल त्रिपाठी

डॉ. रामलखन वर्मा

डॉ. अवधेश कुमार

बिभु कल्याण महांती

समन्वय

श्री नारायण महाभोई

श्री डानिएल खुंटिया

फोटो

भगवान बेहेरा

प्रारूप

सुनील कुमार सिन्हा

डिस्क्लेमर– पत्रिका में प्रकाशित लेख संबंधित लेखकों के व्यक्तिगत विचार हैं। प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपर्क

निदेशक

भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, विद्याधरपुर, कटक–753006, ओडिशा

फोन–06712367757, ईमेल– director.nrri@icar.gov.in, वेबसाइट– icar-nrri.in

निःशुल्क वितरण के लिए

परशोत्तम रूपाला
PARSHOTTAM RUPALA

सत्यमेव जयते

राज्य मंत्री
कृषि एवं किसान कल्याण
भारत सरकार
Minister of State For
Agriculture & Farmers Welfare
Government of India

D.O. No. 853 ....MOS(A&FW)/VIP/2019-20/

संदेश

राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान ने पिछले कई दशकों के दौरान देश की अलग-अलग कृषि पारितंत्रों के लिए अधिक पैदावार और रोग प्रतिरोधी चावल की किस्मों और उत्पादन प्रौद्योगिकियों के विकास पर महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय प्रगति की है। वर्तमान में लगभग 85 प्रतिशत चावल उत्पादन करने वाले क्षेत्रों में संस्थान की उच्च पैदावार वाली किस्में प्रयोग हो रही हैं। यह सराहनीय है कि शोधकर्ताओं, किसानों, विस्तार एजेंसियों और नीति निर्माताओं के एकीकृत प्रयासों के फलस्वरूप देश में पिछले कुछ वर्षों में 120 मिलियन टन से अधिक चावल का उत्पादन हो रहा है। देश अब चावल उत्पादन में आत्मनिर्भर है। देश से सालाना लगभग 10 मिलियन टन चावल का निर्यात होता है, जिसके फलस्वरूप चावल विदेशी मुद्रा अर्जन का एक महत्वपूर्ण स्रोत हो गया है। इसका श्रेय इस महान संस्थान के सभी वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों को जाता है, दशकों से चावल में स्थायी उत्पादन तकनीक विकसित करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण के साथ अथक प्रयास करते रहे हैं।

यह असीम हर्ष का विषय है कि राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान अपनी स्थापना के 75 वर्ष पूरा कर चुका है तथा प्लेटिनम जयती के अवसर पर राजभाषा हिंदी पत्रिका 'धान' का एक विशेषांक प्रकाशित कर रहा है। मेरा यह मानना है चावल अनुसंधान एवं इसकी उपलब्धियों से जुड़े विभिन्न विषयों की जानकारी आम किसानों तक उनकी भाषा में पहुँचनी चाहिए। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि संस्थान पिछले कई सालों से धान पत्रिका के माध्यम से स्टाफ सदस्यों को उनकी साहित्यिक एवं रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए मंच प्रदान करता आया है साथ ही संस्थान के वैज्ञानिकों ने चावल अनुसंधान के संबंध में अनेक जानकारी मौलिक रूप से हिंदी में प्रकाशित करके वैज्ञानिक साहित्य की संपदा को बढ़ाया है। निश्चित रूप से पत्रिका के विशेषांक के प्रकाशन से राजभाषा हिंदी में विकास को गति प्राप्त होगी तथा विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा मिलेगा।

मेरी ओर से इस पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी पदाधिकारियों, संपादक मंडल तथा लेखक वर्ग को हार्दिक बधाई एवं अनेकानेक शुभकामनाएं।

(परशोत्तम रूपाला)

Delhi Office : Room No. 322, 'A' Wing, Krishi Bhawan, Dr. Rajendra Prasad Road, New Delhi-110 001
Tel : +91-11-23383975/76 Fax : +91-11-23383971, E-mail : mosrupala@gmail.com
Gujarat Office : Plot No. 219, Sector-20, Gandhinagar-382 020 Tele. : 079-23260013

त्रिलोचन महापात्र, पीएच.डी.
सचिव, एवं महानिदेशक
TRILOCHAN MOHAPATRA, Ph.D.
SECRETARY & DIRECTOR GENERAL

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001
GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH & EDUCATION
AND
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
MINISTRY OF AGRICULTURE AND FARMERS WELFARE
KRISHI BHAVAN, NEW DELHI 110 001
Tel.: 23382629; 23386711 Fax: 91-11-23384773
E-mail: dg.icar@nic.in

संदेश

चावल, विश्व की लगभग आधी जनसंख्या तथा भारत की तीन–चौथाई जनसंख्या का मुख्य भोजन है और कई देशों की सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है। सन् 1946 में स्थापित भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (ICAR - NRRI), कटक देश का एक प्रमुख चावल अनुसंधान संस्थान है जिसने अपनी अग्रणी प्रौद्योगिकियों द्वारा देश की हरित क्रांति और खाद्य सुरक्षा में उल्लेखनीय योगदान दिया है। संस्थान ने विगत वर्षों में राष्ट्र की खाद्य सुरक्षा में उत्कृष्ट योगदान दिया है और साथ ही चावल अनुसंधान के क्षेत्र में कई कीर्तिमान स्थापित किए हैं। वर्तमान में भारत के 14 राज्यों में बड़े भूभागों में संस्थान द्वारा विकसित किस्मों की खेती की जाती है । देश में लगभग 45% चावल का क्षेत्र वर्षाश्रित है तथा उसमें से लगभग 70% प्रतिशत क्षेत्र पूर्वी भारत में स्थित है। राष्ट्र के इस अग्रणी चावल अनुसंधान संस्थान पर देश के वर्षाश्रित क्षेत्रों में चावल के उत्पादन में वृद्धि करने का काम प्रमुख रूप से सौंपा गया है, जिसमें भूमि और पानी की कम उपलब्धता, जलवायु परिवर्तन के कारण अधिक कठिन वातावरण उत्पन्न होना, ऊर्जा और उर्वरकों की अधिक कीमत, श्रमिकों की कमी, खेती की बढ़ती लागत, लाभ में गिरावट और पर्यावरण के अनुकूल तकनीकियों की मांग जैसे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का सदैव यह प्रयास रहा है कि इसके अधीन कार्यरत संस्थानों द्वारा विकसित विभिन्न फसलों की नई किस्मों और प्रौद्योगिकियों से संबंधित सूचना हिंदी में प्रकाशित की जाए ताकि अधिक से अधिक लोग इन जानकारियों से लाभान्वित हो सकें। मेरे लिए यह गर्व और गौरव का विषय है राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान अपनी स्थापना की 75वीं वर्षगांठ के अवसर पर अपनी वार्षिक राजभाषा पत्रिका **'धान'** का प्लेटिनम विशेषांक प्रकाशित कर रहा है।

संस्थान के 75 गौरवशाली वर्ष पूरा होने तथा राजभाषा पत्रिका 'धान' के विशेषांक के प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं। मैं इस पत्रिका के विशेषांक के प्रकाशन हेतु संस्थान के निदेशक, सभी वैज्ञानिक एवं कर्मचारी, पत्रिका के संपादन मंडल एवं पत्रिका से जुड़े अन्य अधिकारियों को बधाई देता हूं तथा इस पत्रिका एवं संस्थान के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं।

त्रि. महापात्र
(त्रिलोचन महापात्र)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय
भारत सरकार, कृषि भवन
नई दिल्ली 110001, भारत

Indian Council of Agricultural Research
Ministry of Agriculture and Farmers Welfare
Govt. of India, Krishi Bhavan
New Delhi 110001, India

डॉ. तिलक राज शर्मा
उप महानिदेशक (फसल विज्ञान)

Dr. T. R. Sharma, Ph.D
FNA, FASc, FNAAS, FNASc, JC Bose National Fellow
Deputy Director General (Crop Science)

संदेश

सन् 1943 के भीषण बंगाल अकाल की पृष्ठभूमि में भाकृअनुप-राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक की स्थापना वर्ष 1946 में की गई थी। इस संस्थान ने न केवल पूर्वी क्षेत्रों में बल्कि पूरे भारतवर्ष में चावल के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संस्थान ने देश की हरित क्रांति में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और किसानों की आय बढ़ाने के लिए बहुत योगदान दिया है। संस्थान ने अधिक उपज देने वाली उन्नतशील चावल की किस्मों के विकास से देश में चावल उत्पादन में आत्मनिर्भरता की उपलब्धि में उत्कृष्ट योगदान दिया है और घरेलू मांग की पूर्ति तथा चावल के निर्यात में सक्षम बनाया है। इस अग्रणी संस्थान द्वारा विकसित किस्मों में से अधिकांश किस्मों की खेती भारत के कई राज्यों में की जा रही है। लेकिन, जलवायु परिवर्तन से उभरती प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण निरंतर बढ़ती आबादी के लिए खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु चावल के उत्पादन को बढ़ाने का सतत् प्रयास जारी रखने के लिए यह संस्थान पूरी तरह से तैयार है तथा लाखों छोटे और सीमांत किसानों के जीवन में खुशहाली लाने के लिए कृतसंकल्प है।

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान ने अपनी विकास यात्रा के 75 वर्ष सफलतापूर्वक सम्पन्न किए हैं और अपनी प्लेटिनम जयंती के अवसर पर वार्षिक हिंदी पत्रिका '**धान**' के विशेष अंक का प्रकाशन करने जा रहा है। इस विशेष अंक के प्रकाशन के लिए संस्थान को मैं हार्दिक बधाई देता हूं।

संस्थान पिछले कई वर्षों से चावल अनुसंधान से जुड़ी तकनीकी जानकारी तथा अन्य ज्ञानवर्धक लेखों को सरल व सुगम हिंदी में प्रकाशित करता आ रहा है, जिससे ओडिशा के ही नहीं बल्कि भारत के अन्य राज्यों के किसान समुदाय भी लाभान्वित हो रहे हैं।

मैं आशान्वित हूं कि **धान** का यह प्रस्तुत विशेष अंक सभी पाठक वर्गों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ।

(डॉ. तिलक राज शर्मा)

निदेशक की कलम से

देश में चावल उत्पादन को बढ़ाने और बनाए रखने हेतु राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (एन.आर.आर.आई.) द्वारा चावल की उन्नतशील किस्में और चावल आधारित कृषि–प्रौद्योगिकियां निरंतर विकसित की जा रही हैं। सन् 1946 में अपनी स्थापना वर्ष से संस्थान ने अब तक विभिन्न पारिस्थितिकी प्रणालियों के लिए चावल की 142 उच्च उपज देने वाली किस्में विकसित की हैं। एन.आर.आर.आई. द्वारा विकसित चावल की किस्में न सिर्फ ओडिशा के किसानों में बहुत लोकप्रिय रही हैं बल्कि अधिकांश राज्यों में इसकी किस्में मुख्य रूप से खेती की जाती हैं। पिछले कुछ वर्षों में, एन.आर.आर.आई. के किस्मों की प्रजनक बीज की मांग काफी बढ़ी हैं, जिससे यह पता चलता है कि विभिन्न राज्यों के किसानों के बीच एन.आर.आर.आई. की किस्में कितनी अधिक लोकप्रिय हो रही हैं। चावल उत्पादन को बढ़ाने और बनाए रखने तथा जलवायु परिवर्तन से उभरती चुनौतियों को दूर करने के लिए कृषि–प्रौद्योगिकियों को विकसित करने तथा किस्मों को लोकप्रिय बनाने के लिए संस्थान ने कई सक्रिय कदम उठाए हैं। संस्थान ने क्षमता निर्माण, कृषि विस्तार साहित्य के प्रकाशनों के क्षेत्रों में अपनी कार्यकलापों को मजबूत किया है ताकि हितधारकों तक अपनी प्रौद्योगिकियों को प्रभावी ढंग से पहुंचाया जा सके।

संस्थान की स्थापना होने के 75 वर्ष पूरा होने के उपलक्ष्य में, प्लेटिनम जयंती उत्सव के अवसर पर संस्थान की राजभाषा पत्रिका 'धान' की विशेषांक को सभी समर्पित पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है। किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति का विशेष स्थान होता है। राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान राष्ट्र का एक प्रतिष्ठित एवं अग्रणी संस्थान है जो देश में पिछले कई दशकों से चावल अनुसंधान के सभी पहलुओं पर पूर्ण रूप से समर्पित रहा है। अनुसंधान तकनीकों को आम लोगों तक उनकी भाषा में पहुंचाने के लिए संस्थान द्वारा हिंदी सहित क्षेत्रीय भाषा में भी तकनीकी साहित्य का प्रकाशन किया जाता है। 'धान' पत्रिका का नियमित प्रकाशन इस निष्ठा की एक कड़ी है। राष्ट्रीय एकात्मता की भावना के अनुरुप हिंदी के प्रसार के लिए यह संस्थान प्रतिबद्ध है तथा पत्रिका इसी भावना से पोषित और प्रेरित है। मैं संपादन कार्य से जुड़े सदस्यों एवं 'धान' पत्रिका की विशेषांक के प्रकाशन के स्तुत्य कार्य के लिए बधाई देता हूं, वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं शोध अध्येताओं को उनके आलेखों के योगदान के लिए धन्यवाद देता हूं तथा आशा करता हूं कि यह पत्रिका उत्तरोत्तर परिष्कृत, समृद्ध और लोकप्रिय हो। पत्रिका की निरंतर प्रगति एवं उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामनाओं सहित।

दीपंकर माईती
निदेशक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान

संपादकीय...

भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान की प्लेटिनम जयंती उत्सव के तहत राजभाषा वार्षिक पत्रिका 'धान' की विशेषांक आप सभी को समर्पित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। संस्थान के वैज्ञानिकों एवं कार्मिकों की सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति और हिंदी में लिखने की अभिरुचि को मंच प्रदान करना इस पत्रिका का उद्देश्य है। हिंदी केवल साहित्य की भाषा ही नहीं, बल्कि अत्याधुनिक विज्ञान को अंगीकार करके आगे बढ़ने में एक सक्षम भाषा है, इसीलिए, संस्थान की राजभाषा पत्रिका धान को प्रकाशित करने की परिकल्पना की गई है। संस्थान में कुछ कर्मचारी तो ऐसे होते हैं जिन्हें लेखन कला ईश्वर की अमूल्य देन के रूप में मिली होती है परंतु कुछ कर्मचारी ऐसे भी होते हैं जिनकी प्रतिभा की पहचान यदि कर लें तो वे सफल कहानीकार, लेखक व कवि बन सकते हैं। ऐसे ही प्रतिभाशाली व्यक्तियों की खोज करने के लिए गृह–पत्रिका एक माध्यम का काम करती है। संस्थान की 'धान' पत्रिका जहां विज्ञान व अन्य गूढ़ विषयों से संबंधित जानकारी राजभाषा हिंदी में प्रस्तुत कर शोध अध्येताओं और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो रही है, साथ ही किसान वर्ग तक चावल संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी पंहुचा कर राष्ट्रीय हित का कार्य कर रही है क्योंकि अधिकांश किसानों की भाषा हिंदी है। अतः सहज संप्रेषण को समाहित करने वाली इस तरह की पत्रिका को हमारे संस्थान की धरोहर की संज्ञा दी जा सकती है।

'धान' की इस विशेषांक में संस्थान के 75 वर्षों के संक्षिप्त इतिहास और उपलब्धियों के साथ–साथ चावल फसल के विभिन्न विषयों की नवीनतम जानकारी को सरल एवं सहज भाषा में लिखे आलेखों का संकलन किया गया है। पत्रिका में प्रस्तुत सारगर्भित जानकारी सुधी पाठकों का ज्ञानवर्धन करेगी। हम पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के लेखकों को उनके सहयोग के लिए धन्यवाद देते हैं और उनके प्रति आभार व्यक्त करते हैं। इसे और अधिक उपयोगी बनाने के विषय में पाठकों के अमूल्य सुझाव तथा प्रतिक्रियाएं हमारे पथ प्रदर्शक होंगे, इसी आशा के साथ।

संपादक मंडल

किसी भी कार्य के लिए तुरंत उठो, जागो और तब तक मत रूको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए..

–स्वामी विवेकानंद

विषय सूची

क्रमांक	विषयवस्तु	विषय	पृष्ठ
1	राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थानः उत्पत्ति और विकास	डी पंडा एवं एच पाठक	13
2	एनआरआरआई के पूर्व निदेशक		26
3	भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थानः क्रियाकलाप, उपलब्धियाँ और आकांक्षाएँ	एच पाठक, जयप्रकाश बिसेन और एस के प्रधान	29
4	धान अनुसंधान : एक लघु चिन्तन	श्री गोपाल शर्मा	45
5	पूर्वी भारत के लिए चावल–मक्का फसल प्रणाली आधारित संरक्षण कृषि	राहुल त्रिपाठी, ए.के. नायक, बी, लाल, मोहम्मद शाहिद, प्रियंका गौतम, सुष्मिता मुंडा, एस महांती, पी के गुरु, रुबीना खानम, बी बी पंडा, बी एस शतपथी, डी चटर्जी, उपेंद्र कुमार, एस डी महापात्र, पी के नायक	47
6	विभिन्न पारितंत्रों के लिए संस्थान द्वारा विकसित चावल की किस्में	एस के दाश, एस के प्रधान, एम के कर, एस एस सी पटनायक, एल बेहेरा, जे मेहेर, ए आनंदन, बी सी मरांडी, एस लेंका, के चट्टोपाध्याय, ओ एन सिंह, टी महापात्र	53
7	पारम्परिक चावल उत्पादक राज्य में कृषकों की आय वृद्धि हेतु संकर (हाइब्रिड) चावल तकनीकी एक उत्तम विकल्प	राम लखन वर्मा	63
8	दोहरी रोपाई–निचलीभूमियों में चावल की खेती के लिए एक प्रासंगिक रणनीति	विजय कुमार एस., ए.के. नायक, कृष्ण कांत मीना, प्रेमपाल कुमार	67
9	खाद्य श्रृंखला में सूक्ष्म प्लास्टिक	अरबिंद महांती, श्रीकांत लेंका एवं टोटन अदक	71
10	धान की फसल में आच्छद अंगमारी रोग एवं इसका प्रबंधन	श्रीकांत लेंका, रघु एस., प्रकाश चंद्र रथ एवं अरबिंद महांती	73
11	गुणात्मक चावल एवं उपयोगी सामग्री प्रस्तुतिकरण	पद्मिनी स्वाईं एवं अपराजिता स्वाईं	75
12	धान में भारी धातु विषाक्तता और इसके जैविक उपचार	सागर बनर्जी, एम. जे. बेग	77
13	धान के खेत में छोटी मछलियों का महत्व और उसके फायदे	एनी पूनम, बी.एस. शतपथी, एस.के. लेंका एवं पी.के. साहु	81
14	जैव उर्वरकों का कार्बनिक खेती में योगदान	हरिनारायण, उपेंद्रकुमार, तापस चौधरी, सुमंत वेलुदंडी और एस एच मजूमदार	83
15	जंगली धान के पौषणिक और रासायनिक गुणों का विवेचनात्मक विवरण	सुप्रिया प्रियदर्शिनी, पी संघमित्रा, गौरव कुमार, नबनीता बसाक	87
16	संस्थान को प्राप्त पुरस्कार एवं खेलकूद उपलब्धियां		91
17	एनआरआरआई में विगत वर्षों में परिदर्शन पर आए गणमान्य एवं विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा की गई टिप्पणियों की कुछ फोटो स्मृतियां		100
18	एनआरआरआई में विगत वर्षों के दौरान विभिन्न अवसरों पर परिदर्शन हेतु पधारे गणमान्य व्यक्तियों एवं महानुभावों से जुड़ी कुछ फोटो स्मृतियां		107

NRRI

भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान: उत्पत्ति और विकास

डी पंडा एवं एच पाठक

सारांश

भारत के लोग लगभग 7000 वर्षों से चावल की खेती कर रहे हैं। भारत के दो तिहाई से अधिक जनसंख्या का प्रमुख भोजन चावल है। सन् 1950 से पहले, चावल की खेती ज्यादातर मानसून पर निर्भर थी। अधिक वर्षा या बहुत कम वर्षा के कारण बाढ़ और सूखे की परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था। इन अजैविक तनावों के कारण फसलों में व्यापक क्षतियां, भुखमरी से मौतें हुईं और अकाल भी हुए तथा सन् 1866 में ओडिशा में 'नअंक दुर्भिक्ष' के नाम से भीषण अकाल हुआ जिससे लगभग 18 लाख लोगों की मृत्यु हुई। कीट और रोग महामारियों के कारण बड़े भूभागों में चावल की फसल में हुए गंभीर नुकसान भी अकाल का कारण बना और इस तरह सन् 1943 में द ग्रेट बंगाल फेमिन के नाम से सबसे विनाशकारी अकाल हुआ था जिसमें लगभग 20 लाख लोगों की मौत हुई थी। यह अकाल चावल की फसल में भूरा धब्बा रोग, द्वितीय विश्व युद्ध का ब्रिटिश साम्राज्य की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव और प्रभावित क्षेत्रों में भोजन जुटाने में प्रशासन की विफलता के कारण पड़ा। इस अकाल की पृष्ठभूमि में, भारत सरकार ने चावल अनुसंधान के लिए एक केंद्रीय संस्थान स्थापित करने का निर्णय लिया और संस्थान की स्थापना करने हेतु एक उपयुक्त स्थल का चयन करने के लिए डॉ के रमैया को विशेष अधिकारी के रूप में नियुक्त किया। उन्होंने कई चावल की खेती करने वाले राज्यों का दौरा किया और कोयंबाटूर और कटक में दो स्थलों को चुना। इस विषय से अवगत होने के बाद, ओडिशा प्रांत के तत्कालीन प्रधान मंत्री महाराजा कृष्ण चंद्र गजपति ने चावल संस्थान की स्थापना के लिए केंद्र सरकार को राज्य कृषि फार्म, कटक को तुरंत सौंपने का निर्णय लिया। ओडिशा के कृषि के तत्कालीन निदेशक डॉ प्राणकृष्ण परीजा ने संस्थान के स्थान के लिए कटक की उपयुक्तता के संबंध में डॉ रमैया के समक्ष पूर्ण औचित्य रखा। अंत में, डॉ के रमैया की सिफारिश पर, भारत सरकार ने 1946 में कटक में केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (सीआरआरआई) की स्थापना की। प्रारंभ में, संस्थान का मुख्य उद्देश्य देश में प्रति हेक्टेयर चावल की पैदावार बढ़ाने के लिए उन्नतशील चावल किस्मों तथा प्रौद्योगिकी के विकास के लिए चावल के सभी पहलुओं पर आधारभूत और प्रायोगिक अनुसंधान करना था। सीआरआरआई के अन्य उद्देश्य चावल उत्पादन से संबंधित सभी मामलों पर चावल के शोधकर्ताओं, किसानों और अन्य हितधारकों को प्रशिक्षित करने के लिए आधिकारिक सूचना केंद्र के रूप में कार्य करना था।

संस्थान ने कटक में राज्य कृषि प्रक्षेत्र को अधिग्रहण करके कार्य करना आरंभ किया, जो स्थानीय रूप से बिद्याधरपुर प्रक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। प्रारंभ में 10 वैज्ञानिकों सहित कर्मियों की भर्ती, मौजूदा बुनियादी ढांचे के नवीकरण और चावल अनुसंधान की सुविधा के लिए अतिरिक्त भौतिक सुविधाओं के निर्माण पर ध्यान केंद्रित किया गया। अनुसंधान कार्य 5 प्रभागों जैसे वनस्पतिविज्ञान, रसायन, शस्यविज्ञान, कीटविज्ञान और कवकविज्ञान में आबंटित किया गया था। समय के अनुसार, अनुसंधान के प्रभागों/अनुभागों की संख्या को बढ़ाकर बारह कर दिया गया, जिन्हें फिर से 5 अर्थात् फसल उन्नयन, फसल उत्पादन, फसल सुरक्षा, फसल कार्यिकी और जैव रसायन तथा सामाजिक विज्ञान प्रभागों में पुनर्गठित किया गया। 1958 में एक प्रयोगशाला खंड बनाया गया था। इसके अलावा, 1980 के दशक की शुरुआत में एक नई प्रशासनिक–सह–प्रयोगशाला भवन का निर्माण किया गया था। संस्थान का नाम बदलकर 2015 में भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (एनआरआरआई) कर दिया गया। 2018–19 में एक अत्याधुनिक एवं नवीनतम उपकरणों से सुसज्जित केंद्रीय जीनोमिक्स और गुणवत्ता प्रयोगशाला, सामाजिक विज्ञान प्रभाग के लिए नया भवन, कृषि विज्ञान केंद्र के लिए संथपुर, कटक में नया भवन और एक नया सभागार के निर्माण के साथ बुनियादी ढांचा विकास किया गया। संस्थान में वैज्ञानिकों की कूल स्वीकृत संख्या अब 110 है।

स्थान–विशिष्ट अनुसंधान का विस्तार करने के लिए, दो उप–केंद्रों झारखंड के हजारीबाग में केंद्रीय वर्षाश्रित उपराऊंभूमि चावल अनुसंधान केंद्र और असम में गेरुआ में क्षेत्रीय वर्षाश्रित तराऊंभूमि चावल अनुसंधान केंद्र की स्थापना क्रमशः 1980 और 1986 में की गई थी। एनआरआरआई के तहत ओडिशा के कटक जिले के संथपुर में और दूसरा झारखंड के कोडरमा जिले के जयनगर में किसानों को शिक्षित करने, सशक्त बनाने और आय बढ़ाने की दृष्टि से दो कृषि विज्ञान केंद्र कार्यरत हैं।

अपने अस्तित्व के 75 वर्षों की पूरी अवधि के दौरान, संस्थान

ने 142 उच्च उपज वाले चावल की किस्मों, कई फसल उत्पादन और संरक्षण प्रौद्योगिकियों और कृषि उपकरणों का विकास किया है। शोधकर्ताओं, विस्तार श्रमिकों और नीति निर्माताओं के योगदान और किसानों की कड़ी मेहनत के साथ, देश में चावल का उत्पादन 1950 में 20 मिलियन टन (मेट्रिक टन) से बढ़कर 2019–20 में 118.43 मिलियन टन हो गया है। देश अब सालाना लगभग 10 मेट्रिक टन चावल का निर्यात कर रहा है और वार्षिक लगभग 50,0000 करोड़ रुपये अर्जित कर रहा है।

परिचय

भारत में कम से कम 7000 वर्षों से चावल की खेती की जा रही है। जोंग एट अल की एक रिपोर्ट (2007) से पता चलता है कि चीन में चावल की खेती का इतिहास लगभग 7,700 साल पुराना है। चूंकि उत्तर–पूर्व भारत, बर्मा, थाईलैंड, वियतनाम और दक्षिण चीन के कुछ भागों समेत एक विशाल क्षेत्र में चावल की भूमिजातियों की समृद्ध विविधता है, इसलिए इस क्षेत्र को खेतीयोग्य चावल की उत्पत्ति का प्राथमिक केंद्र माना जाता है। इसी तरह, जैसे कि ओडिशा के अविभाजित कोरापुट जिले के जयपुर क्षेत्र में भूमिजातियों की एक बड़ी विविधता है, इसे चावल की उत्पत्ति का दूसरा केंद्र माना जाता है (रॉय, 2017)।

भारत और एशिया एवं अफ्रीका के कई अन्य देशों में चावल सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। चावल की फसल के महत्व को पहचानते हुए, इंपीरियल काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च (वर्तमान में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद), 1929 में अपनी स्थापना के बाद से, चावल उगाने वाले कई राज्यों में स्थित चावल प्रजनन केंद्रों और अनुसंधान परियोजनाओं को प्रायोजित किया और चावल अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए समर्थन किया। लेकिन, स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के बाद दो दशक तक भी चावल का कुल उत्पादन देश की आवश्यकताओं से काफी कम था। चूँकि चावल का उत्पादन अधिकांशतः मानसून पर निर्भर था, इसलिए प्रतिकूल या कम वर्षा या अत्यधिक वर्षा से फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। सूखा, बाढ़ और तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं से भोजन की कमी हुई, लोगों की भुखमरी बढ़ी और यहां तक कि भयानक अकाल हुए। अजैविक तनावों के अलावा, कभी–कभी कीटों और बीमारियों की भीषण महामारी की जैविक तनावों के कारण स्वतंत्रता से पहले की अवधि के दौरान भारत के लोगों के लिए बहुत सारे दुखद स्थिति हुई एवं चावल उत्पादन में भारी कमी हुई।

सन् 1860 और 1910 के बीच 20 से अधिक अकाल हुए। इन अकालों में से सबसे ज्यादा विनाशकारी 1866 का महान ओडिशा अकाल (नअंक दुर्भिक्ष) था, जिसमें लगभग 10 लाख लोग मारे गए थे जो ओडिशा के कटक, पुरी और बालेश्वर जिलों की लगभग एक तिहाई जनसंख्या थी। यह अकाल सितंबर और अक्टूबर में वर्षा समय से पहले बंद होने, सिंचाई की कमी और साथ ही औपनिवेशिक प्रशासन के दोषपूर्ण नीतियों के कारण हुआ। भारत सरकार इन सभी अकालों की परिस्थितियों से सुधारात्मक उपाय विकसित करने के लिए बाध्य हुई। इसलिए, चावल पर अनुसंधान करने, उन्नत चावल किस्में विकसित करने और चावल उत्पादन प्रौद्योगिकियां विकसित करने तथा अपनाने के लिए पूरे भारत में कई चावल प्रजनन और अनुसंधान केंद्र स्थापित किए गए।

भीषण बंगाल अकाल की त्रासदी

वर्ष 1942 के दौरान तत्कालीन बंगाल प्रांत जिसमें पश्चिम बंगाल और वर्तमान के बांग्लादेश में चावल का उत्पादन बहुत कम हुआ जिसके कारण 1943 में भीषण बंगाल अकाल हुआ। वर्ष 1942 में चावल के उत्पादन में कमी मुख्य रूप से बंगाल प्रांत में कवक रोगजनक, हेल्मिनथोसपोरियम ओराइजा के कारण से चावल की फसल में हुई भूरा धब्बा रोग की महामारी के लिए जिम्मेदार ठहराया गया (पद्मानाभन एस वाई, 1973)। वर्ष 1942, 1943 और 1944 के साथ वर्ष 1942 के खरीफ मौसम के दौरान मौसम के मापदंडों की तुलना से पता चलता है कि 1942 के खरीफ मौसम में सितंबर में अत्यधिक वर्षा हुई थी, दो महीने तक लगातार 20–30 डिग्री सेल्सियस का अनुकूल तापमान, असामान्य मेघाच्छिादित मौसम, अधिक वर्षा और नवंबर में एक उच्च न्यूनतम तापमान था। ये असामान्य मौसम की स्थिति अविभाजित बंगाल में चावल में भूरा धब्बा महामारी की घटना के लिए अनुकूल थी।

भीषण बंगाल अकाल इतना विनाशकारी था कि लगभग दो मिलियन लोग भुखमरी से मर गए। भूरा धब्बा रोग की महामारी ही मुख्य रूप से अकाल के प्रकोप के लिए जिम्मेदार था। इसके बाद डॉ एस.वाई पद्मनाभन को अक्टूबर, 1943 में बंगाल में कवक वैज्ञानिक के रूप में नियुक्त किया गया था। बंगाल में अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने ब्रह्मपुत्र से ढाका के बहादुराबाद घाट तक के रास्ते में मृत शरीर, भूखे और मरने वाले व्यक्तियों को देखा। यह गंभीर अकाल 1943 के अक्टूबर, नवंबर और दिसंबर के दौरान बंगाल के महत्वपूर्ण शहरों, विशेष रूप से कलकत्ता और ढाका के आसपास जारी रहा। द्वितीय विश्व युद्ध (1939–1945) के कारण ब्रिटिश साम्राज्य

सीआरआरआई का पुराना भवन

सीआरआरआई का नया भवन

सहित दुनिया के कई देशों में तीव्र भोजन की कमी की समस्या और बढ़ गई थी। दूसरे विश्व युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य की अर्थव्यवस्था लगभग चरमरा गई। परिणामस्वरूप, ब्रिटिश भारत का नागरिक प्रशासन व्यापक रूप से फैली हुई भोजन की कमी का सामना करने में विफल रहा। वर्ष 1942 में चावल के नगण्य विपणन योग्य भंडार के कारण, बाजार में चावल की कीमत बढ़ती चली गई और यह मुख्य खाद्य लोगों की पहुंच से परे हो गया तथा लोग इस खाद्य अनाज को खरीद नही पाए। इसलिए, अधिकांश ग्रामीण लोग रोजगार की तलाश में शहरों की ओर चले गए। चूँकि वे गाँवों या शहरों में रोजगार और भोजन प्राप्त करने में असफल रहे, इसलिए भुखमरी के कारण उन्होंने धीरे–धीरे दम तोड़ दिया।

केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (सीआरआरआई) की स्थापना

पूरे देश में चावल का कम उत्पादन, भीषण बंगाल अकाल का प्रकोप तथा लाखों आम लोगों की तीव्र भूखमरी एवं असहनीय त्रासदियों के कारण विशेष रूप से 1940 के आरंभ में, ब्रिटिश भारत सरकार को दूसरे विश्व युद्ध के तुरंत बाद देश के चावल क्षेत्र में एक उपयुक्त स्थल पर एक केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान की स्थापना हेतु सक्रिय रूप से विचार करने के लिए प्रेरित किया। स्थानीय जरूरतों की आपूर्ति को पूरा करने के लिए देश के विभिन्न प्रांतों में एक दूसरे के साथ बिना किसी जुड़ाव के स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाले कई चावल प्रजनन और अनुसंधान केंद्र थे। कम उत्पादकता की चुनौतियों का सामना करने और राष्ट्रीय स्तर पर चावल उत्पादन के सभी पहलुओं पर बहु–विषयक अनुसंधान से निपटने के लिए क्षेत्रीय प्रजनन केंद्रों और अनुसंधान केंद्रों में उपलब्ध अनुसंधान सुविधाएं भी अपर्याप्त थीं। देश में चावल अनुसंधान को तेज करने के लिए, भारत सरकार ने उस समय फसल पर उपकर द्वारा वित्त पोषण करने के लिए एक केंद्रीय चावल समिति का गठन करने पर विचार किया। चूंकि जनता की राय चावल जैसी प्रमुख खाद्य फसल पर उपकर लगाने का पक्ष नहीं थी, इसलिए चावल के लिए एक अलग द्रव्य समिति के गठन का विचार छोड़ दिया गया। भारत सरकार ने अंततः 1945 में अपने तत्वावधान में केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान की स्थापना के लिए एक निर्णय लिया। तात्कालिक अनुवर्ती कार्रवाई में, भारत सरकार ने डॉ कृष्णस्वामी रमैया को चावल अनुसंधान में उनके उल्लेखनीय योगदान के आधार पर सीआरआरआई की स्थापना हेतु एक उपयुक्त स्थल का चयन करने के लिए इंपीरियल काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च में विशेष अधिकारी के पद में नियुक्त किया। डॉ रमैया का एक विस्तृत जीवनवृत्तांत जिसे 'राइस रमैया' के नाम से जाना जाता है, एनआरआरआई (2017–18) की वार्षिक रिपोर्ट में उपलब्ध है।

डॉ एस पटनायक, पूर्व निदेशक, सीआरआरआई, कटक, जिन्होंने 38 वर्षों (1952–1990) के लिए संस्थान की सेवा की, से चर्चा के बाद, पता चला कि निम्नलिखित ऐतिहासिक घटनाएं और प्रख्यात हस्तियों ने केंद्रीय चावल की स्थान चयन और 1946 में कटक में अनुसंधान संस्थान की स्थापना की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाया।

महाराजा कृष्ण चंद्र गजपति ओडिशा के मुख्यमंत्री बने और उन्होंने एक स्वतंत्र कृषि विभाग का गठन किया जो पहले विकास निदेशालय के अधीन था। उन्होंने प्रख्यात वनस्पतिशास्त्री, डॉ प्राण कृष्ण परीजा को कृषि निदेशक के रूप में नियुक्त किया। डॉ परीजा एक साथ कृषि निदेशक एवं उत्कल विश्वविद्यालय के कुलपति का पद संभाल रहे थे। डॉ परीजा और डॉ रमैया दोनों कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के भूतपूर्व

केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक के संस्थापक

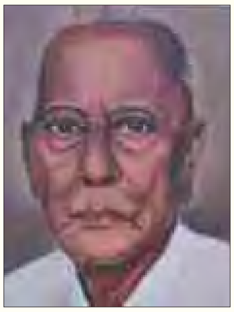
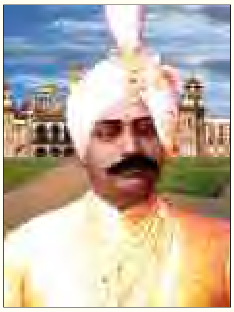

बाएं से: डॉ कृष्णास्वामी रमैया, सीआरआरआई के स्थान चयन के लिए विशेष अधिकारी, डॉ प्राण कृष्ण परीजा, कृषि निदेशक, ओडिशा, महाराजा कृष्ण चंद्र गजपति, ओडिशा के प्रधान मंत्री।

छात्र थे। महाराजा के.सी. गजपति प्रिंसेस फोरम के महासचिव भी थे और महाराजा सयाजी राव गायकवाड़ इसके अध्यक्ष थे। प्रिंसेस फोरम के महासचिव के रूप में, महाराजा गजपति को देश के विकास मामलों के संबंध में भारत के वायसराय की कार्यकारी परिषद के सदस्यों के साथ विचार–विमर्श करने के लिए कई अवसर प्राप्त हुए थे। सर सी एन त्रिवेदी इस कार्यकारी परिषद के एकमात्र भारतीय सदस्य थे। इसके बाद सर सी.एन. त्रिवेदी को ओडिशा के पहले भारतीय गवर्नर के रूप में नियुक्त किया गया था। उस समय, स्थान चयन प्रक्रिया लगभग अंतिम चरण में थी। डॉ के रमैया ने दो स्थलों को चुना–एक कोयंबाटूर में और दूसरी कटक में। जब इसे महाराजा के.सी. गजपति ने, वाइसराय की कार्यकारी परिषद को कटक में केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान स्थापित करने के लिए प्रभावित किया और कटक में केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान की स्थापना के लिए राज्य कृषि फार्म जिसे बिद्याधरपुर फार्म के रूप में जाना जाता है, भारत सरकार को 60 हैक्टर के भूमि क्षेत्र और मौजूदा बुनियादी ढांचा के साथ मुफ्त में स्थानांतरित करने की पेशकश की।

डॉ पी.के. परिजा ने इस बिंदु पर सर्वाधिक महत्व देते हुए कहा कि अन्य सूचीबद्ध स्थलों की तुलना में कटक में चावल संस्थान की स्थापना के लिए अधिक उपयुक्त है क्योंकि पूर्वी भारत के अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों असम, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, दक्षिण बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तर आंध्र प्रदेश सहित दक्षिण भारत के राज्य के भागों में चावल प्रमुख खाद्य फसल है। जून से सितंबर तक मानसून के मौसम में कटक में 1000 मिमी से अधिक वर्षा होती है। वर्षा अक्टूबर में कुछ अधिक हो रही थी और नवंबर के पहले पखवाड़े में भी अधिक वर्षा हुई। मानसून के मौसम के दौरान, ओडिशा और आसपास के राज्यों की निचलीभूमि और मध्यम भूमि में चावल के अलावा कोई भी फसल सफलतापूर्वक खेती नहीं जा सकती थी। इसके अलावा, कटक भारत के चावल क्षेत्र में स्थित है। इसके विपरीत, कोयम्बाटूर में पूरे वर्ष में 800 मिमी से कम वर्षा हो रही थी और वर्षाजल की अपर्याप्तता के कारण चावल की सिंचाई ज्यादातर की जाती थी। डॉ परीजा द्वारा दिए गए इस औचित्य के आधार पर कटक में संस्थान की स्थापना के लिए भारत सरकार को राज्य कृषि फार्म को मुफ्त में हस्तांतरित करने के लिए ओडिशा सरकार की तत्काल इच्छा के आधार पर, डॉ के रमैया ने कटक को केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान की स्थापना के लिए उपयुक्त स्थल को अंतिम रूप देने की सिफारिश की। इस सिफारिश को भारत के वाइसराय की कार्यकारी परिषद ने स्वीकार कर लिया। भारत सरकार ने आखिरकार 1946 में कटक में केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान की स्थापना की सिफारिश को स्वीकार कर लिया और अगस्त 1946 में 5 साल की अवधि के लिए डॉ के रमैया को इसका निदेशक नियुक्त किया।

प्रारंभिक वर्षों में सीआरआरआई का कार्य (1946–1951)

डॉ रमैया ने 27 सितंबर 1946 को संस्थान के संस्थापक निदेशक के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। ओडिशा के कटक में स्थित 60 हेक्टेयर भूमि की राज्य कृषि फार्म, भवन और अन्य बुनियादी सुविधाओं सहित अधिग्रहण कर लिया गया तथा बाद में मौजूदा प्रक्षेत्र के लिए अतिरिक्त भूमि अधिग्रहण की व्यवस्था की गई थी। शुरुआत में, खेत के चारों ओर बाड़ लगाने, थ्रेसिंग फ्लोर, औजारशाला, भंडार घर और प्रयोगशालाओं एवं स्टाफ क्वार्टरों के निर्माण के लिए योजनाओं और अनुमानों को तैयार करने पर ध्यान दिया गया। सिंचाई और जल निकासी नालियों सड़कों और

फुटपाथों के साथ परीक्षण क्षेत्रों का लेआउट भी एक साथ किया गया। आवश्यक पशुओं और अन्य सरोसामान का भी अधिग्रहण किया गया।

संस्थान के लिए वैज्ञानिक कर्मचारियों की भर्ती में कुछ कठिनाई हुई। लेकिन, भारत और पाकिस्तान में देश के विभाजन के साथ, विस्थापित व्यक्तियों के समूह से बाहर हुए पुरुष जो पहले पाकिस्तान वाले क्षेत्रों में कृषि वैज्ञानिकों के रूप में काम कर रहे थे, उपलब्ध हुए। संस्थान का कार्य पांच प्रभागों के अंतर्गत संचालित किया गया। वनस्पति विज्ञान, रसायन विज्ञान, शस्यविज्ञान, कीटविज्ञान और कवक विज्ञान प्रभागों के समन्वय से सभी संभव प्रासंगिक दृष्टिकोणों सहित चावल उत्पादन प्रणाली के अनुसंधान योग्य मुद्दों को समाधान किया जाने लगा।

भारत के माननीय प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 13 अप्रैल, 1948 को संस्थान का परिदर्शन किया और अपनी सम्मानित टिप्पणी दिया "भारत में, एशिया में और पूरे विश्व में अपने ही प्रकार के प्रथम धान संस्थान को मेरी शुभकामनाएं। धान से संबंधित समस्याओं का यह समाधान करें"। एक पट्टिका में उत्कीर्ण इन पंक्तियों को संस्थान के मुख्य भवन के प्रवेश द्वार में स्थापित की गई है। (कृपया नीचे देखें)

पंडित नेहरू ने 3 जनवरी, 1962 को दूसरी बार संस्थान का परिदर्शन किया। नेहरू ने उस दौरान आवासीय कॉलोनी (नेहरू कॉलोनी) और बाल उद्यान (नेहरू बाल उद्यान) का दौरा किया था।

वनस्पति विज्ञान प्रभाग में, आरंभिक अवधि में विभिन्न राज्यों से ओराइजा की अर्ध–जंगली, जंगली, खेतीयोग्य चावल जननद्रव्यों के संग्रह पर ध्यान केंद्रित किया गया। सौभाग्य से, डॉ के रमैया द्वारा पूर्व वर्षों में धान प्रजनन केंद्र, कोयंबाटूर में संरक्षित किए गए जननद्रव्य को उपलब्ध कराया गया, जिन्हें सीआरआरआई, कटक में प्रारंभिक आनुवंशिक भंडार में लाया गया था। इसके साथ ही, आनुवंशिक भंडार के संरक्षण और पौधों के प्रजनन में उनके उपयोग का कार्य किया गया। कटक में उपलब्ध किस्मों सहित भारत भर से एकत्र सभी उन्नत किस्मों का नियमित उपज परीक्षण किए गए थे। इन परीक्षणों से ही ओडिशा के टी 141 के उत्कृष्ट प्रदर्शन को प्रकाश में लाया गया था। चयन और संकरण के अलावा, मुख्य रूप से लिंकेज समूहों को निर्धारित करने के लिए आनुवंशिक अध्ययन किए गए थे। प्रारंभ में, नई किस्मों को प्रजनन करने के लिए, प्रकाश अवधि की संवेदनशीलता और गैर–संवेदनशीलता के प्रति तथा शीघ्र पकने वाली किस्मों पर ध्यान केंद्रित किया गया था। जैविक खादों के साथ और बिना रासायनिक उर्वरकों के चावल की किस्मों की प्रतिक्रिया पर परीक्षण भी किए गए। स्थायी परीक्षण के लिए भूखंडों का निर्माण किया गया। संस्थान के रसायन विज्ञान प्रभाग ने जलमग्न मिट्टी के रसायनिक विशेषताओं तथा जलाक्रांत मिट्टी में उर्वरकों के प्रयोग परीक्षण शुरू की जो भारत में एक अग्रणी कार्य था। कीटविज्ञान प्रभाग का कार्य दो सबसे महत्वपूर्ण कीटों, तना छेदक और पित्त मक्खी तथा उनके नियंत्रण पर केंद्रित था। कवक विज्ञान प्रभाग का कार्य दो कवक रोगों, प्रध्वंस और भूरा धब्बा पर केंद्रित था। प्रभाग ने रोग प्रतिरोधक क्षमता और संकरण के लिए आनुवांशिक भंडारों के परीक्षण पर भी काम किया।

खाद्य और कृषि संगठन के कृषि विभाग में स्थायी सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में, डॉ रमैया ने 1946, 1947 और 1948 में विश्व के विभिन्न देशों में संगठन के वार्षिक सम्मेलनों में भाग लिया। एशिया और पश्चिम एशिया में चावल उत्पादन में सुधार के लिए खाद्य और कृषि संगठन ने अपने अधीन एक अंतर्राष्ट्रीय चावल आयोग शुरू करने का फैसला किया। भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए, डॉ रमैया ने 1948 से 1951

के दौरान अंतर्राष्ट्रीय चावल आयोग की वार्षिक बैठकों में भाग लिया। बर्मा में 1950 में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय चावल आयोग की बैठक में, खाद्य और कृषि संगठन द्वारा एक अंतर्राष्ट्रीय सहकारी चावल प्रजनन परियोजना शुरू करने के उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया था और सीआरआरआई में कार्य आरंभ किया गया था। इस परियोजना के तहत इंडिका चावल के साथ जपोनिका को संकरीकरण करने का एक गहन कार्यक्रम शुरू किया गया था और एफ2 बीज अपनी स्थितियों के लिए सबसे उपयुक्त प्रकारों का चयन करने के लिए विभिन्न सहयोगी केंद्रों और चावल अनुसंधान केंद्रों को भेजा गया था। इस कार्यक्रम को सीमित सफलता मिली। लेकिन, सीआरआरआई से भारत के भीतर तथा विश्व के विभिन्न देशों और संस्थानों को भेजे गए संकरित आबादी की बीजों में से, मद्रास राज्य के क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, अदुतुरई ने एक आशाजनक संवर्धन की पहचान की और इसे एडीटी–27 के रूप में विमोचित किया। इसके अलावा, इस कार्यक्रम से मलेशिया में महसूरी और मालिंजा और ऑस्ट्रेलिया में सर्कना चावल की किस्में की पहचान हुई और उन्हें खेती के लिए विमोचित किया गया। खाद्य और कृषि संगठन ने चावल प्रजनन में विभिन्न देशों से चुने गए प्रशिक्षण व्यक्तियों के लिए सीआरआरआई को एक आधिकारिक केंद्र के रूप में मान्यता दी। संस्थान अपनी स्थापना के समय से खाद्य और कृषि संगठन के अंतर्राष्ट्रीय चावल आयोग के साथ निकटता का संपर्क और सहयोग बनाए हुए है। अंतर्राष्ट्रीय चावल आयोग ने भी विश्व के चावल जननद्रव्य के रखरखाव के मुख्य केंद्रों में से सीआरआरआई को मान्यता दी।

1946–1951 के दौरान, ओडिशा में चावल की खेती में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को लोकप्रिय बनाने के लिए एक योजना शुरू की गई थी। हालांकि, प्रमुख सिंचाई वाले क्षेत्रों में अप्रैल के अंत तक नहर का पानी उपलब्ध होता था, किंतु भूमि को परती छोड़ दी जाती थी और चावल के बाद दूसरी फसल (रबी) की खेती प्रथा अज्ञात था। ऐसे क्षेत्रों में, रबी मौसम में चावल की उपयुक्त किस्मों को सफलतापूर्वक उगाया गया था और इस प्रथा ने तब से गहरी जड़ें जमा ली हैं और बहुत प्रगति (सीआरआरआई, 1956) की है। संस्थान ने 1960 के दशक की शुरुआत में टी90 और उरांग उरगान के संकर से कड़े तने वाले जावानिका का उपयोग कर न गिरने वाले प्रकारों के लिए प्रजनन शुरू किया और सीआरआरआई–1014 विकसित किया जिसके दाने सुपर फाइन हैं (रॉय, 2017)। मध्यम गहरा जल जलजामव की स्थिति में 3–4 टन प्रति हैक्टर की उपज वाली यह किस्म भारत के कई राज्यों में व्यापक रूप से लोकप्रिय हो गई।

संस्थान की अवस्थिति, स्थल एवं मृदा विशेषताएं

यह संस्थान भुबनेश्वर हवाईअड्डे से लगभग 35 किलोमीटर दूर तथा कटक रेलवे स्टेशन से 7 किलोमीटर दूर कटक–पारादीप राज्य राजमार्ग पर अवस्थित है। यह संस्थान लगभग 85 डिग्री 55′48″ पूर्व से 85 डिग्री 56′48″ देशांतर और 20 डिग्री 26′35 ″उत्तर से 20 डिग्री 27′35″ अक्षांसों के बीच स्थित है, जिसमें प्रक्षेत्र की सामान्य ऊंचाई औसत समुद्र स्तर से 23 मीटर ऊपर है। कटक की जलवायु गर्म एवं उप–आर्द्र है तथा औसत वार्षिक वर्षा लगभग 1500 मिमी के बीच है। खरीफ के दौरान 1000 मिमी से अधिक वर्षा होती है।

संस्थान के खेत 1 प्रतिशत से कम ढलान सहित काफी समतल हैं। भूमि में उथली भूजल स्तर है। पूरे खेत में मई के अंत में खोदी गई सैंतीस मिट्टी के गड्ढों से पता चला है कि उप–सतही जल स्तर 0.45 मीटर से 1.5 मीटर तक की गहराई पर दिखाई देता है। इसकी सतही जल निकासी उतनी अच्छी नहीं है एवं आंतरिक जल निकासी भी है। खेत में निचलीभूमि और मध्यम भूमि शामिल है एवं उपरीभूमि बहुत ही कम हैं।

चूंकि संस्थान के खेत महानदी नदी के डेल्टा में विकसित जलोढ़ मूल के हैं, वे बहुत गहरे हैं। वे मध्यम से उच्च जैविक पदार्थ मात्रा सहित काफी उपजाऊ हैं।

संस्थान के लक्ष्य

संस्थान की स्थापना निम्नलिखित प्रमुख लक्ष्यों के साथ की गई थी:

1. चावल की प्रति हेक्टेयर उपज को अनुकूलित करने के लिए चावल उत्पादन तकनीक विकसित करने हेतु चावल फसल के सभी विषयों में मूलभूत और प्रायोगिक पहलुओं पर अनुसंधान करना।
2. चावल किसानों द्वारा उपयोग के लिए स्थान विशिष्ट सिफारिशें करने से पहले देश के चावल उगाने वाले क्षेत्रों में अपनाए जाने वाले अनुसंधान का संचालन, समन्वय और प्रोत्साहित करना।
3. राष्ट्रीय स्तर पर चावल उत्पादन, सुरक्षा और चावल जननद्रव्य से संबंधित सभी मामलों पर आधिकारिक जानकारी देने के लिए एक केंद्र के रूप में सेवा प्रदान करना।

4. सर्वेक्षण के माध्यम से चावल के क्षेत्रों में उत्पादन बाधाओं की पहचान करना और उत्पादन के लिए उपयुक्त तकनीकों का सुझाव देना।
5. चावल के संबंध में संचार और प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण में भाग लेना।
6. देश में चावल उत्पादन प्रौद्योगिकियों पर अनुसंधान और विस्तार कार्मिकों को प्रशिक्षित करना।

मूल अधिदेश के मुख्य विषय पर फिर से विचार करते हुए, संस्थान के उद्देश्यों को समय–समय पर संस्थान के विकास के साथ संशोधन किए गए हैं। वर्तमान में, अनुसंधान नीतियों को अनुसंधान सलाहकार समिति, पंचवर्षीय समीक्षा दल और संस्थान अनुसंधान परिषद की सिफारिशों द्वारा निर्देशित किया जाता है। इसकी योजनाओं और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन का समर्थन करने के लिए एक संस्थान प्रबंधन समिति भी है। हाल के वर्षों में स्थिर चावल उत्पादन प्रौद्योगिकी विकास पर अधिक ध्यान दिया गया है, जिसमें उत्पादकता और उत्पादन की गुणवत्ता में वृद्धि, लाभ, व्यवहार्यता, किसानों द्वारा स्वीकार्यता, ग्लोबल वार्मिंग के कारण हाल ही में जलवायु परिवर्तन की घटनाओं को ध्यान में रखते हुए किसानों की सुरक्षा और समग्र कल्याण पर्यावरण शामिल हैं।

संस्थान का विकास

प्रक्षेत्र भूमि के निकट अतिरिक्त भूमि के अधिग्रहण के साथ परीक्षण खेत की भूमि क्षेत्र 60 हेक्टेयर से बढ़कर 117 हेक्टेयर हो गया। संस्थान ने शुरू में 10 वैज्ञानिकों के साथ अपनी अनुसंधान यात्रा आरंभ किया और बाद में 1960 में यह बढ़कर 40 हो गई, 1980 में 170, फिर 1990 में 140 और 2000 के दौरान 118 हो गई। वर्ष 2021 तक संस्थान में 120 वैज्ञानिक कार्यरत हैं।

वैज्ञानिक कर्मियों की भर्ती के साथ–साथ अनुसंधान के विस्तार और गहनता के साथ, अतिरिक्त प्रयोगशाला सुविधाओं की मांग बढ़ी और 1958 में एक प्रयोगशाला खंड बनाया गया। समय के साथ–साथ, बुनियादी सुविधाओं जैसे कि नेट हाउस, प्रक्षेत्र गोदाम एवं इंजीनियरिंग कार्यशाला का निर्माण किया गया। अन्य सुविधाओं में सम्मेलन कक्ष, सभागार, समिति कक्ष, संग्रहालय, पुस्तकालय, चिकित्सालय, क्लब हाउस, अतिथिगृह, किसान छात्रावास, अंतर्राष्ट्रीय छात्रावास और वैज्ञानिक घर निर्माण किया गया। संस्थान में डाकघर, पुलिस चौकी, भारतीय स्टेट बैंक का एक एटीएम और सिविल, विद्युत और जल आपूर्ति संरचनाओं के रखरखाव के लिए इकाइयां भी हैं। इसके अलावा, 1980 के दशक की शुरुआत में नए प्रशासनिक–सह–प्रयोगशाला भवन का निर्माण किया गया था। विभिन्न श्रेणियों के लगभग 300 स्टाफ परिवारों के लिए अतिरिक्त स्टाफ क्वार्टरों का निर्माण भी किया गया था।

1990 के दशक में समकालीन उन्नत अनुसंधान की जरूरतों को पूरा करने के लिए, अत्याधुनिक उपकरण जैसे स्वचालित अमीनो एसिड विश्लेषक, अल्ट्रा सेंट्रीफ्यूज, गैस क्रोमैटोग्राफ, परमाणु अवशोषण स्पेक्ट्रोफोटोमीटर, परमाणु द्रव्यमान स्पेक्ट्रोमीटर, तरल सिंटीलेशन काउंटर, एरोबिक कक्ष, तरल क्रोमैटोग्राफी, इंफ्रारेड गैस विश्लेषक, इंफ्रारेड स्पेक्ट्रोफोटोमीटर, रेस्पिरोमीटर, फ्लोरोसेंट माइक्रोस्कोप, कंप्यूटर और कई अन्य सामान्य रूप से उपयोग किए जाने वाले उपकरणों को विगत वर्षों में स्थापित किया गया है। इसके अलावा, एशियन राइस बायोटेक्नोलॉजी नेटवर्क, रॉकफेलर फाउंडेशन, फोर्ड फाउंडेशन, कोलंबो प्लान, मीथेन एमिशन, एसएआरपी, आईआरआरआई–सीआरआरआई सहयोगात्मक क्रीमेंट परियोजना, नाइट्रोजन उपयोग दक्षता पर भारत–अमेरिका सहयोग परियोजना, एपी सेस फंड योजनाओं और एनएटीपी सहित कई बाहरी सहायता प्राप्त परियोजनाएं आरंभ किए गए तथा इन योजनाओं और परियोजनाओं में उपलब्ध निधियों का उपयोग करके कई और उन्नत उपकरण लगाए गए एवं परियोजनाएं संचालित की गईं।

2011–2019 से हाल के वर्षों में, किसी भी राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय संस्थान की तुलना में संस्थान में उन्नत चावल अनुसंधान करने के लिए उपकरणों और अन्य भौतिक सुविधाओं के साथ प्रयोगशालाओं का और अधिक विस्तार किया गया है। नई जीनोमिक्स प्रयोगशाला और केंद्रीय गुणवत्ता नियंत्रण प्रयोगशाला भवनों का निर्माण, नवीनतम और अल्ट्रा–आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं की स्थापना इसके उदाहरण हैं। चूंकि मौजूदा सभागार और सम्मेलन कक्ष राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी और किसान–वैज्ञानिक विचार–विनिमय की बैठकों में प्रतिभागियों की बड़ी संख्या को समायोजित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, इसलिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा एक बड़े सभागार के निर्माण की आवश्यकता को मान्यता दी गई। ऐसे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगोष्ठियों और किसानों की बैठकों के आयोजन के लिए, 500 प्रतिभागियों के लिए एक नया सभागार का निर्माण 2019 में पूरा हो चुका है।

सीआरआरआई का पहला उप केंद्र, केंद्रीय लवण चावल अनुसंधान उपकेंद्र की स्थापना 1959 में पोर्ट कैनिंग में पश्चिम बंगाल के लवणता क्षेत्र में की गई थी। इसे लवण प्रतिरोधी चावल की किस्मों के प्रजनन के लिए उपयुक्त तकनीक विकसित करने और उपयुक्त शस्यात्मक खेती पद्धतियां विकसित करने के उद्देश्य से बनाया गया था। हालांकि इस केंद्र को बाद में 1969 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान के साथ मिला दिया गया था, जो विशेष रूप से तटीय लवणता क्षेत्रों में चावल अनुसंधान के लिए था (सीआरआरआई, 1996)।

वर्षाश्रित चावल पर स्थान विशिष्ट अनुसंधान का विस्तार करने के लिए दो उप–केंद्रों का झारखंड के हजारीबाग में केंद्रीय वर्षाश्रित उपराऊंभूमि चावल अनुसंधान केंद्र और पश्चिम बंगाल के खड़गपुर में केंद्रीय वर्षाश्रित तराऊंभूमि चावल अनुसंधान केंद्र क्रमशः 1980 और 1986 में स्थापित किए गए थे। बाद में, केंद्रीय वर्षाश्रित तराऊंभूमि चावल अनुसंधान केंद को असम के गेरुआ में स्थानांतरित कर दिया गया था ताकि देश के उत्तर पूर्वी क्षेत्र की विशिष्ट निचलीभूमि चावल अनुसंधान आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

चूंकि बहु–स्थानिक चावल अनुसंधान को मुख्य रूप से उपज के लिए प्रजनक पौधों का परीक्षण और जैविक तनाव के प्रति प्रजनन पौध के प्रतिरोधिता का आकलन करने के लिए आवश्यक माना गया था, 1966 में हैदराबाद में अखिल भारतीय समन्वित चावल सुधार परियोजना शुरू की गई थी। अखिल भारतीय समन्वित चावल सुधार परियोजना ने शुरू में कुछ वर्षों के लिए सीआरआरआई के एक भाग के रूप में कार्य किया। इसके बाद, अखिल भारतीय समन्वित चावल सुधार परियोजना के परियोजना निदेशालय का नाम बदलकर चावल अनुसंधान निदेशालय कर दिया गया, जो एक स्वतंत्र संस्थान के रूप में सीधे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के तहत संचालित हुआ। सीआरआरआई समन्वय का प्रमुख भागीदार रहा है। हाल के वर्षों में चावल अनुसंधान निदेशालय का नाम बदलकर भारतीय चावल अनुसंधान संस्थान कर दिया गया है।

किसानों को प्रशिक्षित करने, सशक्त बनाने और उनकी आय बढ़ाने की दृष्टि से, कटक जिले के संतपुर में, ढेंकनाल जिले के अन्नपूर्णापुर, कामक्षानगर और अनुगूल जिले के कालीपद में 1990 के मध्य में तीन कृषि विज्ञान केंद्रों की स्थापना की गई, जो सीधे सीआरआरआई के तहत कार्य करते थे। इसके बाद, इन तीन कृषि विज्ञान केंद्रों में से दो कृषि विज्ञान केंद्रों में से एक ढेंकनाल जिले में और दूसरा अनुगूल जिले में ओडिशा कृषि प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के प्रशासनिक नियंत्रण में स्थानांतरित कर दिया गया। कटक जिले के संथपुर में कृषि विज्ञान केंद्र शुरू से ही सीआरआरआई के तहत काम कर रहा है। हाल ही में, इस कृषि विज्ञान केंद्रों में बहुत सारे संरचनात्मक विकास कार्य जैसे प्रयोगशाला, नए उपकरणो, आवश्यक भौतिक सुविधाओं का प्रावधान के साथ नए कार्यालय भवन और सुसज्जित प्रयोगशाला भवन के निर्माण के साथ पूरा किए गए हैं। इसके अलावा, एक और कृषि विज्ञान केंद्र सीआरआरआई के केंद्रीय वर्षाश्रित उपराऊंभूमि चावल अनुसंधान केंद्र के तहत झारखंड में कोडरमा जिले के जयनगर में स्थापित किया गया है। यह एकीकृत उपाय के माध्यम से किसानों के सशक्तीकरण, आय में वृद्धि और कल्याण के संबंध में संबंधित जिले के किसानों की जरूरतों को पूरा करता है। सीआरआरआई ने प्रौद्योगिकियों के स्थानांतरण हेतु ऑपरेशन रिसर्च प्रोजेक्ट्स, प्रयोगशाला से खेत तक और इंस्टीट्यूट–विलेज लिंकेज कार्यक्रमों पर विस्तार कार्यकलापें भी आयोजित की हैं। इस संबंध में, एनआरआरआई के तहत फार्मर्स फर्स्ट कार्यक्रम वर्तमान में चल रहा है।

सीआरआरआई ने 1998–2003 की अवधि के दौरान विश्व बैंक द्वारा वित्त पोषित राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना के माध्यम से विभिन्न कृषि–पारिस्थितिक स्थितियों में विभिन्न चावल आधारित फसल प्रणालियों के लिए कृषि प्रौद्योगिकियों को विकसित करने और उन्हें सटीक करने के लिए ऑन–फार्म अनुसंधान किया। सीआरआरआई ने 35 मुख्य केंद्रों पर वर्षाश्रित चावल आधारित उत्पादन प्रणाली पर 35 ऑन–फार्म अनुसंधान परियोजनाओं के लिए नोडल एजेंसी के रूप में काम किया और पूरे देश में 150 से अधिक सहयोगी केंद्र हैं। इस उद्देश्य के लिए, सीआरआरआई में एक अलग राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना प्रकोष्ठ बनाया गया था और इन सभी वर्षाश्रित चावल आधारित उत्पादन प्रणाली परियोजनाओं के समन्वय के लिए प्रधान वैज्ञानिकों में से वरिष्ठतम वैज्ञानिक या संस्थान के निदेशक को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा एक सुविधक के रूप में पहचान एवं नियुक्त किया गया था।

यह संस्थान चावल विज्ञान के विभिन्न विषयों में अकादमिक और नवीन अनुसंधान भी कर रहा है, जो चावल के फसल सुधार, फसल उत्पादन और सुरक्षा कार्यक्रमों पर अच्छा प्रभाव डाल रहा है। संस्थान को कई विश्वविद्यालयों द्वारा डॉक्टरेट

की डिग्री के लिए अग्रणी उन्नत अनुसंधान के लिए एक केंद्र के रूप में मान्यता प्राप्त है। संस्थान के वैज्ञानिकों तथा झारखंड के उप–केंद्र सीआरयूआरआरएस के वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन में विभिन्न विषयों में अभिनव अनुसंधान के माध्यम से सैकड़ों छात्रों और शोध अध्येताओं को पीएचडी डिग्री से सम्मानित किया गया है। संस्थान के वैज्ञानिकों ने बड़ी संख्या में अनुसंधान पेपर की पीयर समीक्षा की है जिन्हें राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में उच्च ख्याति मिली है। इसके अलावा, संस्थान के वैज्ञानिकों ने कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार एवं मान्यताएँ भी प्राप्त की हैं।

हालाँकि संस्थान की स्थापना के समय केवल पाँच विभाग/खंड थे, बाद में प्रभागों/अनुभागों की संख्या बढ़कर बारह हो गई जैसे कि पौध प्रजनन एवं आनुवांशिकी, आनुवंशिक संसाधन, शस्यविज्ञान, मृदाविज्ञान एवं सूक्ष्मजीवविज्ञान, कृषि आभियांत्रिकी, कीटविज्ञान, पादप रोगविज्ञान, कार्यिकी, जैवरसायन, कृषि अर्थशास्त्र, सांख्यिकी एवं विस्तार, संचार और प्रशिक्षण। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के निर्णय के अनुसार, संस्थान के पांच प्रभागों (प) फसल उन्नयन, (पप) फसल उत्पादन, (पपप) फसल सुरक्षा, (पअ) फसल कार्यिकी और जैव रसायन और (अ) सामाजिक विज्ञान में पुनर्गठित किया गया है। वर्तमान में संस्थान में पांच विभागाध्यक्ष हैं।

वर्ष 1958–1984 के दौरान चावल अनुसंधान एवं विकास का प्रभाव

वर्ष 1950 से 1984 की अवधि के दौरान, भारत में चावल का उत्पादन 1950 में लगभग 20 मिलियन टन से बढ़कर 1983–84 में 60 मिलियन टन तक बढ़ गया था। यद्यपि भारत में कम से कम 7,000 वर्षों से चावल की खेती की जाती है, लेकिन पिछले 35 वर्षों में उत्पादन में सुधार करने में अधिक प्रगति हुई है। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के माध्यम से सिंचाई, उर्वरकों और उच्च उपज वाली किस्मों के गुणवत्ता बीज, कीटनाशकों, प्रक्षेत्र उपकरणों के प्रावधान सहित सीआरआरआई, राज्य कृषि विश्वविद्यालययों एवं आईआरआरआई द्वारा विकसित विज्ञान आधारित तकनीक, सहकारी और बैंकिंग क्षेत्रों के माध्यम से ऋण, सरकार की अनुकूल नीतियों और सभी किसानों के सतत् प्रयासों के समुचित मिश्रण से प्रगति को गति मिलने के साथ–साथ उत्पादन भी बढ़ा।

1960 में फिलीपींस में अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान की स्थापना ने ताइवान किस्म से अर्ध–बौनेपन के लिए जीन के उपयोग के आधार पर इंडिका चावल पौधे के प्रकार में सुधार की अवधारणा को बढ़ावा देने में मदद की। इससे उच्च उपज देने वाली किस्में विकसित हुई जिसमें अधिक उर्वरक के प्रयोग के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया देखने को मिली। वर्ष 1966 में अंतर्राष्ट्रीय चावल वर्ष के दौरान, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने एक हजार राष्ट्रीय प्रदर्शनों का आयोजन किया यह दिखाने के लिए कि इंडिका चावल में उपज स्थिरता टूट सकती है। इसने चावल के उत्पादन और उत्पादकता में सुधार में तेजी से आगे बढ़ने की मार्ग को प्रशस्त किया (स्वामीनाथन, 1985)। टी.टी. चांग (1961), आईआरआरआई के आनुवंशिकीविद् टीएन 1 और अन्य उच्च उपज वाली इंडिका किस्म के चावल विकसित करने में वहां के प्रजनकों द्वारा हासिल की गई सफलता के बारे में जानते थे। चांग ने आईआरआरआई पौध प्रजनन वैज्ञानिकों को सुझाव दिया कि वे अपने संकरण कार्यक्रम में जनक के रूप में उपयोग के लिए ताइवान से इन अर्ध–बौना इंडिका चावल किस्मों में से कुछ का प्रवेश करें। आईआरआरआई के चावल प्रजनकों ने शुरू में इन किस्मों के बीज की खरीद में कुछ समय बर्बाद किए। इसके बाद, किस्म सुधार कार्यक्रम के प्रमुख डॉ पी आर जेनिंग्स ने क्रॉस की एक श्रृंखला बनाई जिसमें ताइवान से शुरू की गई अर्ध–बौनी इंडिका जनकीय वंशावलियों को शामिल किया गया।

सीआरआरआई एवं भारत में हरित क्रांति

डॉ एच.के. जैन (2010), भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के भूतपूर्व निदेशक ने अपनी पुस्तक ''द ग्रीन रिवोल्यूशनः हिस्ट्री, इम्पैक्ट एंड फ्यूचर'' में चावल क्रांति के सभी पहलुओं की समीक्षा की है। खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा प्रायोजित इंडिका–जपोनिका संकरीकरण परियोजना में जब पौध प्रजनक भारत और अन्य देशों में इंडिका चावल की पैदावार में बड़ी बढ़त हासिल करने के लिए संघर्ष कर रहे थे, ताइवान के वैज्ञानिकों ने विश्व में इंडिका चावल की अधिक उपज देने वाली, उर्वरक प्रतिक्रिया वाली, अर्ध बौना वाली किस्मों का पहला समूह विकसित कर चुके थे। इन इंडिका चावल किस्मों की उत्पत्ति और विकास की समीक्षा अठवाल (1971) ने की है। यह सब विकास पारंपरिक किस्म के साथ शुरू हुआ जिसे डी–जियो–वू–जेन कहा जाता है, जो ताइवान के किसान 20वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में खेती कर रहे थे। इस किस्म का पौध का प्रकार बहुत अलग था जो बौना, अधिक दौजियां वाली और पुआल सख्त था, जिसे बहुत

बाद में ताइवान कृषि प्रयोग केंद्र के वैज्ञानिकों के ध्यान में आया। उन्होंने इस किस्म का प्रयोग प्रजनन कार्यक्रम में किया। इन क्रॉस के उत्पादों में से एक, जिसमें डी–जियो–वू–जेन और त्साइ–युआन–चुंग शामिल थे, ताइचुंग नेटिव 1 किस्म थी, शायद पहली अर्ध–बौनी, उर्वरक प्रतिक्रिया वाली, उच्च उपज वाले चावल की किस्म जो भारत सहित एशिया के कई देशों में इंडिका चावल किस्मों की एक पूरी पीढ़ी की प्रोटोटाइप बन गई थी। भारत में सीआरआरआई, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों और एशिया के कई अन्य देशों में चावल अनुसंधान की दिशा में बदलाव के माध्यम से चावल के उत्पादन में क्रांति लाने के इस प्रयास में आईआरआरआई एक उत्प्रेरक बना।

भारत सरकार ने श्री के के दामले, कृषि मंत्रालय के तत्कालीन सचिव, जो आईआरआरआई के न्यासी बोर्ड के सदस्य थे के माध्यम से आईआरआरआई में डी–जियो–वू–जेन का उपयोग करके चावल की किस्मों के विकास संबंधित अनुसंधान की प्रगति के बारे में पता किया। इसके अलावा, रॉबर्ट एफ. शेंडलर जूनियर, आईआरआरआई के पहले निदेशक ने भारत की अपनी नियमित यात्राओं के दौरान इस मुद्दे पर केंद्रीय कृषि मंत्री श्री सी. सुब्रमणियम और सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों को भी जानकारी दी थी। जिन अधिकारियों को उन्होंने जानकारी दी उनमें से एक श्री बी शिवरामन थे, जो बाद में कृषि मंत्रालय में सचिव बने। कृषि मंत्रालय में अपनी नियुक्ति से पहले, वह ओडिशा के मुख्य सचिव थे और चावल अनुसंधान कार्यक्रमों का निरीक्षण करने के लिए सीआरआरआई, कटक आए थे। वैज्ञानिकों में से उनके संपर्क में डॉ जी.वी. चलाम आए जो ओडिशा के आर्थिक वनस्पतिशास्त्री थे एवं जो बाद में 1950 के दशक में राज्य के कृषि विभाग में उप निदेशक बने। चावल सुधार कार्यक्रम में अध्ययन के लिए 1964 में डॉ चामल को आईआरआरआई में प्रतिनियुक्त किया गया था। आईआरआरआई में रहते हुए, उन्होंने ताइचुंग नेटिव 1 के उत्कृष्ट प्रदर्शन के बारे में जाना और भारत में परीक्षण के लिए इस किस्म के 2 किलोग्राम बीज लेने के लिए कहा। डॉ चलाम ने ताइचुंग नेटिव 1 के साथ जो परीक्षण किया वह सफल रहा। तब कृषि मंत्रालय ने डॉ आर डब्ल्यू क्युमिंग्स, नई दिल्ली में रॉकफेलर फाउंडेशन के फील्ड डायरेक्टर की सहायता से आईआरआरआई से ताइचुंग नेटिव 1 के एक टन बीज की खरीद की व्यवस्था की। जब डॉ चामल राष्ट्रीय बीज निगम के अध्यक्ष बने, तो उन्होंने अक्टूबर 1965 में टीएन 1 के 5 टन बीजों की खरीद की और बाद में टीएन 1 के 60 टन बीजों का आयात किया और भारत में इसका गुणवत्ता बढ़ाने के लिए इन बीजों का वितरण किया विशेष रूप से शुष्क मौसम के दौरान जब कीटों और बीमारियों की घटना कम थी।

आईआरआरआई के पहले निदेशक डॉ रॉबर्ट एफ शेंडलर ने आईआरआरआई के चावल प्रजनन कार्यक्रम के लिए इस नई दिशा में चांग के योगदान की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने बताया कि टीएन 1 को 1956 में ताइवान में विमोचित किया गया था और 1960 तक इसे व्यापक रूप से किसानों द्वारा खेती किया जाने लगा जिससे 6–8 टन प्रति हेक्टेयर की उपज मिलती थी तथा सिंचाई और उर्वरकों की बड़ी खुराक के उपयोग सहित अच्छे कृषि प्रबंधन शामिल थे। इसके बाद, आईआरआरआई में चावल के प्रजनकों ने 1962 में ताइवान से प्राप्त अर्ध–बौनी किस्मों को जनकीय वंशावलियों में से एक के रूप में प्रयोग करते हुए कई क्रॉस किए। क्रॉस में से एक, विशेषकर 8वीं क्रॉस को डी–जियो–वू–जेन और पेटा के बीच बनाया गया था, जो इंडोनेशियाई मूल का एक लंबा इंडिका किस्म है, जिसे कीटों और रोगों के प्रतिरोध के लिए जाना जाता है। वंशावलियों और उपज परीक्षणों की आवश्यक संख्या के बाद, यह आईआरआरआई से आईआर 8 के रूप में विमोचित किया गया था। भारत में 303 किस्मों और उन्नत पीढ़ी वंशावलियों का एक सेट आईआरआरआई से सीआरआरआई, कटक और हैदराबाद में भी प्राप्त किया गया था। सीआरआरआई में आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ सीतारमण ने पाया कि आईआर श्रृंखला की प्रविष्टियों में से 15 की उपज प्रति हेक्टेयर लगभग 9 टन है। जिन प्रविष्टियों में सबसे अधिक पैदावार दर्ज की गई, वे आईआर 8 श्रृंखला की थीं।

वर्ष 1964 में डॉ जी.वी. चलाम द्वारा ताइचुंग नेटिव 1 की खेती की शुरुआत की गई जो पहली उच्च उपज वाली अर्ध–बौनी किस्म थी तथा भारत में चावल के बड़े क्षेत्र में इसकी खेती की जाने लगी थी। हालांकि आईआरआरआई की आईआर 8 किस्म ने जल्दी ही ताइचुंग नेटिव 1 को पीछे छोड़ दिया। सीआरआरआई के वैज्ञानिकों ने टीएन 1 को कई प्रकार की उन्नत भारतीय किस्मों के साथ क्रॉस किया। श्री एम जे बालकृष्ण राव ने टीएन 1 एवं टीएन 41 को शामिल करके एक क्रॉस तैयार किया। इस क्रॉस का एक उत्पाद अर्ध–बौना एवं उच्च उपज वाली किस्म पद्मा थी जिसे 1968 में भारत सरकार द्वारा विमोचित किया गया था। पद्मा (सीआर 28–25, आईईटी 953) 120 दिनों की अवधि का, दाने

छोटे–मोटे, प्रध्वंस और अन्य प्रमुख रोगों और कीट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी सहित प्रति हेक्टेयर 3.5–4.0 टन की उपज देती थी। संस्थान ने 2018 में पद्मा के विमोचित होने की स्वर्ण जयंती पूरा होने के अवसर पर एक स्वर्णिम फलक तैयार किया। डॉ एस.वी.एस. शास्त्री और उनके सहयोगी हैदराबाद में एआईसीआरआईपी के तहत जया नाम की दूसरी किस्म विकसित की। जया किस्म अधिक सफल हुआ और भारत बड़े भूभागों में इसकी खेती की जाने लगी तथा आईआर 8 किस्म की जगह ले ली। ये दो किस्में जया और पद्मा बेहतर दाना गुणवत्ता तथा रोगों और कीटों के प्रतिरोधिता के कारण किसानों ने अधिक अपनाया।

सीआरआरआई के पौध प्रजनन एवं आनुवांशिकी प्रभाग के अध्यक्ष डॉ आर सीतारमण ने 1960 के दशक की शुरुआत में टीएन 1 और आईआर 8 संबंध में एक बड़ा शोध कार्यक्रम आरंभ किया। इसके बाद डॉ सीतारमण, डॉ गंगाधरन और डॉ बी.के. राव ने अपनी टीम के साथ 18 उच्च उपज वाली अर्ध–बौनी किस्में विकसित कीं जो भारत सरकार द्वारा विमोचित की गईं। ये किस्मों न केवल सिंचित क्षेत्रों में अनुकूल परिस्थितियों के साथ अच्छा प्रदर्शन किया, बल्कि विभिन्न पारिस्थितिकी जैसे उपरीभूमि, मध्यवर्ती और अर्ध–गहरे पानी की स्थितियों के साथ वर्षाश्रित निचलीभूमियों के लिए भी अनुकूल है। 20वीं शताब्दी के अंत तक सीआरआरआई ने चावल की 59 उच्च उपज देने वाली किस्में विकसित किया, जिनमें कई अर्ध–बौने जीन हैं। कई सीआरआरआई किस्में भी अन्य देशों में अफगानिस्तान, नेपाल, पाकिस्तान और उप–सहारा अफ्रीका के कई देशों में लोकप्रिय हुईं। तब तक, सीआरआरआई ने अपने जीन बैंक में 16,000 भूमिजातियों और स्थानीय किस्मों के संग्रह एकत्रित कर चुका था जिनका मूल्यांकन तनाव के प्रतिरोधिता के स्रोतों के रूप में किया गया था। प्रतिरोधिता के इन दाताओं को देश भर में चावल के प्रजनकों को उनके किस्मा विकास कार्यों में उपयोग के लिए उपलब्ध कराया गया था।

इसके साथ ही, डॉ एस पटनायक, भूतपूर्व निदेशक, सीआरआरआई, जिन्हें पहले 1964 में आईआरआरआई में चावल पौध में खनिज पोषण पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया था, ने आईआरएनआरआई के पादप कार्यिकी वैज्ञानिक डॉ ए तनाका से अर्ध–बौने चावल की किस्मों टीएन 1, ताइवान 3 और चियानयुंग के 3 पैकेट बीज एकत्र किए। सीआरआरआई में लौटने पर, उन्होंने 1965 के आर्द्र मौसम में उत्पादन हेतु उनकी खेती की। डॉ जी.वी. चलाम, भारत सरकार के तत्कालीन कृषि आयुक्त और भारत के रॉकफेलर फाउंडेशन के प्रतिनिधि डॉ डब्ल्यू.एच फ्रीमैन ने सीआरआरआई, कटक का दौरा किया और खेत में इन किस्मों के परिपक्व अवस्था के प्रदर्शन से प्रभावित हुए। डॉ चलाम ने भारत में मिनिकिट परीक्षणों के लिए इन किस्मों के बीज रखने का अनुरोध किया। एक अनुवर्ती कार्रवाई में, 1966 में इन 3 किस्मों के (टीएन 1 के 400 बैग, ताइवान के 200 बैग और चियानयुंग के 200 बैग) प्रत्येक के 1 किलो के कुल 800 बैग डॉ चलाम द्वारा उनके तकनीशियन के माध्यम से एकत्र किया गया और उन्हें ओडिशा, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में कृषि फार्मों में और चयनित किसानों के खेतों में परीक्षण के लिए वितरित किया गया।

डॉ चलाम ने वर्ष 1964 में भारत में पहली उच्च उपज वाली अर्ध–बौनी चावल किस्म टीएन 1 को सरकारी कृषि फार्मों और किसानों के खेतों में खेती के लिए प्रस्तुत किया। हालांकि, यह नहीं था कि टीएन 1 ने भारत में अपना रास्ता खोज लिया था। 1960 के दशक की शुरुआत में, जननद्रव्य विनिमय कार्यक्रम के तहत ताइवान से सीआरआरआई, कटक में 67 चावल की किस्में प्राप्त हुईं थी तथा सीआरआरआई के तत्कालीन निदेशक डॉ आर एच रिचारिया ने इनका मूल्यांकन किया था। दिलचस्प बात यह है कि टीएन 1 इस संग्रह में शामिल किस्मों में से एक था। डॉ रिचारिया इन किस्मों में बहुत से कीटों और रोगों की ग्राह्यशीलता के लिए बहुत चिंतित थे। लेकिन, कीटों और रोगों के प्रतिरोधी शक्ति सहित उच्च उपज वाली किस्मों के विकास के लिए इन किस्मों को आनुवंशिक संसाधन के रूप में उपयोग करने के लिए उनकी खुद की रुचि थी। उनके लिए टीएन 1 किस्म किसानों के खेतों में उगाई जाने वाली तैयार किस्म के बजाय एक महत्वपूर्ण आनुवंशिक संसाधन था। डॉ रिचारिया को भूमिजातियों और चावल की पारंपरिक किस्मों के विशाल संग्रह के लिए याद किया जाता है और जो उन्होंने सीआरआरआई (रिचारिया, 1979) में बनाई थी। लेकिन, नव विकसित अर्ध–बौनी चावल किस्मों में कीटों और रोगों की संभावित बड़ी प्रकोप के बारे में डॉ रिचारिया की चिंताओं को बाद में स्वीकार किया गया और विभिन्न जैविक और अजैविक तनावों के प्रतिरोधिता के लिए नेटवर्क के तहत सीआरआरआई, एआईसीआरआई और भारत के अन्य सभी अनुसंधान केंद्रों में भूमिजातियों और पारंपरिक किस्मों की परीक्षण के गहन कार्यक्रम किए गए। प्रजनन कार्यक्रम में

प्रतिरोधी एंटिसवे का उपयोग किया जाता है। प्रतिरोधी प्रविष्टियों को प्रजनन कार्यक्रम मे उपयोग किया गया। परिणामी संवर्धनों को विभिन्न स्थानों पर परीक्षण किया गया और अंत में उच्च उपज देने वाली और जैविक एवं अजैविक तनाव प्रतिरोधिता क्षमता वाली विभिन्न आशाजनक किस्में विमोचित किए गए। इससे देश में चावल के उत्पादन में क्रांति आई। बाद के वर्षों में आईआर 36 किस्म के चावल के विकास ने डॉ रिचारिया की चिंताओं को उचित ठहराया क्योंकि आईआरआरआई में इस उच्च उपज वाली किस्म में भूमिजाति और पारंपरिक किस्मों से मूल्यवान प्रतिरोध जीन को शामिल किया गया था।

सीआरआरआई–महाविनाशकारी तूफान (1999) के पश्चात ओडिशा के तटीय किसानों का उद्धारकर्ता

ओडिशा में 28–30 अक्टूबर, 1999 के दौरान भीषण चक्रवाती हवा और लगातार वर्षा के साथ सुपर साइक्लोन हुआ। इस महाविनाशकारी तूफान से अनेक लोगों को आनी जान गंवानी पड़ी, संपत्ति का नुकसान और तटीय ओडिशा में वृक्षों सहित अन्य फसलों का नुकसान हुआ। समुद्र का पानी तट से 20 किमी तक भूमि क्षेत्र में प्रवेश किया। सभी प्रभावित लोगों ने राज्य और केंद्र सरकार के समक्ष तत्काल राहत और दीर्घकालिक कृषि पुनर्वास के लिए मांगें रखीं। किसानों की राय थी कि भुवनेश्वर स्थित एक शोध संस्थान की एक रिपोर्ट के अनुसार समुद्र के पानी से भूमि में लवण जमा हो जाने के कारण उनकी जमीन पर घास की एक पत्ती भी नहीं उगेगी। इसलिए ओडिशा सरकार ने इस तटीय क्षेत्र के प्रभावित भूमि का सर्वेक्षण करने, मिट्टी और पानी की लवणता का आकलन करने और कृषि पुनर्वास के लिए सिफारिशें देने के लिए सीआरआरआई को एक पत्र लिखा। सीआरआरआई ने डॉ डी पंडा की अध्यक्षता में 3 वैज्ञानिकों की एक टीम को यह चुनौतीपूर्ण काम सौंपा, जिन्होंने फसल क्षेत्रों सहित पूरे प्रभावित भूमि क्षेत्र का सर्वेक्षण किया। बड़ी संख्या में फसल के खेतों से मिट्टी और सतह के पानी के नमूने और नलकूपों से भूजल के नमूने एकत्र किए गए और प्रयोगशाला में उनका विश्लेषण किया गया। वैज्ञानिक जांच में पता चला है कि 93 प्रशितत क्षेत्र की मिट्टी और सतह का पानी गैर–लवण था, अर्थात सामान्य था, जबकि केवल 7 प्रतिश क्षेत्र लवण था, विशेषकर गड्ढों और तालाबों में। समुद्री तट के करीब स्थित नलकूपों से एकत्र भूजल लवण था। समुद्र में उच्च ज्वार की वापसी के बाद 24 घंटों तक लगातार भारी वर्षा के कारण अधिकांश क्षेत्र गैर–लवण बना रहा, जो भूमि में जमा लवण को बहा देता था। इन परिणामों के आधार पर, किसानों के स्तर पर कार्यान्वयन के लिए विश्लेषणात्मक आंकड़ों वाली एक विस्तृत रिपोर्ट, फसल पैटर्न के लिए सिफारिशें और फसल उत्पादन की प्रथाओं के पैकेज का संचार ओडिशा सरकार को किया गया था। किसानों ने अपने खेतों में सिफारिशों का पालन किया और प्रति हेक्टेयर 4 टन से अधिक उपज प्राप्त किया जिससे आंशिक रूप से सुपर साइक्लोन में फसल के नुकसान की भरपाई हुई। वास्तव में, सुपर साइक्लोन के कारण मिट्टी की उर्वरता में सुधार हुआ, क्योंकि शैवाल की एक मोटी परत, जो ज्वार के पानी के साथ जल जमाव के दौरान भूमि पर अधिक मात्रा में जमा हुई थी। आईसीएआर से प्राप्त निर्देशों के आधार पर, सीआरआरआई ने सुपर साइक्लोन के पश्चात 5 वर्षों की लंबी अवधि तक ओडिशा के प्रभावित तटीय क्षेत्र के किसानों के आर्थिक उत्थान के लिए संस्थान के निधियों का उपयोग करके तथा एनएटीपी परियोजनाओं को लागू करते हुए और रामकृष्ण मिशन के सहयोग से बड़े पैमाने पर कृषि पुनर्वास कार्य किया। जब 2004 में तटीय तमिलनाडु में सुनामी हुआ, तो तमिलनाडु सरकार ने इस स्थिति से निपटने के लिए सीआरआरआई के अनुभवों से मदद ली।

सीआरआरआई की 75 साल की सफल यात्रा

1946 से 2021 तक 75 वर्षों की अपनी शानदार यात्रा में, संस्थान अपने मूल, प्रायोगिक और अनुकूल चावल अनुसंधान परियोजनाओं से उत्पन्न ज्ञान को प्रसारित करते हुए एक प्रकाशस्तंभ के रूप में कार्य कर रहा है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि यह चावल अनुसंधान और विकास उद्योग के रूप में भी काम कर रहा है, जो अनुसंधान के अपने उत्पादों को देश और विदेश में किसानों और अन्य हितधारकों के लिए उपलब्ध करा रहा है। यह पद्मभूषण डॉ के रमैया, सीआरआरआई के संस्थापक निदेशक सहित 16 निदेशकों के दूरदर्शी नेतृत्व के साथ और शोधकर्ताओं, सभी सहायक तथा प्रशासनिक कर्मचारियों के समर्पण से संभव हुआ है।

संस्थान में किए गए मूलभूत और नवीन अनुसंधान में शामिल हैं: (i) इंडिका ग जपोनिका संकरण से, भारत में एडीटी 27, मलेशिया में मालिना में मालिंजा तथा ऑस्ट्रेलिया में सिर्कना किस्म विमोचित हुई, (ii) बड़ी संख्या में जननद्रव्य का संग्रह, चावल की प्रजनन में उनका मूल्यांकन, संरक्षण और उपयोग, (iii) चावल के खेतों में जल प्रबंधन पर अग्रणी कार्य, (iv) वर्षाश्रित निचलीभूमियों क्षेत्रों में किस्मों के विकास के लिए पंकज ग जगन्नाथ का संकरण, (v) अर्ध–बौने किस्मों से तथा एक लंबी इंडिका चावल की किस्म से जीनों का उपयोग

करके सिंचित चावल किस्म रत्ना का विकास और (vi) आईआरआरआई के सहयोग से चावल की किस्म में सब–1 जीन का समावेश, स्वर्णा और जलमग्न सहिष्णु किस्म स्वर्णा सब–1 का विकास, (vii) जलमग्न मिट्टी के रसायन विज्ञान, रासायनिक कैनेटीक्स के पोषक तत्व परिवर्तन पर ज्ञान का विकास, (viii) चावल की फसल के उत्पादन में कुशल पोषक प्रबंधन के पूर्ण प्रमाण प्रौद्योगिकियों का विकास और (ix) फसल सुरक्षा प्रभाग में कीटों और रोगों का एकीकृत प्रबंधन, (x) वर्षाश्रित उपरीक्षेत्रों की विशेष पारिस्थितिकी के लिए प्रध्वंस सहिष्णु और सूखा अनुकूल किस्मों का विकास, (xi) वर्षाश्रित उपरीक्षेत्रों की अम्लीय मिट्टी में देशी सूक्ष्मजैविक समर्थन प्रणाली के माध्यम से फोस्फारस का कुशल पोषण प्रबंधन (रमैया, 1971), पद्मनाभन, 1973, महांती और पटनायक, 1976, राव, 1978, रिचारिया, 1979, वामदेवन और झा, 1985, पंडा, 2005 रॉय, 2017, पाठक एट अल, 2018)।

चूँकि यह संस्थान महान बंगाल अकाल की पृष्ठभूमि में स्थापित किया गया था, इसने राष्ट्र को चावल अनुसंधान सहायता प्रदान करके भारत से भुखमरी के उन्मूलन, भुखमरी से मृत्यु और भारत से अकाल उन्मूलन का पवित्र मिशन पूरा किया। चावल अनुसंधान में कई प्रतिमान बदलाव हुए हैं, विशेष रूप से ताइवान से अर्ध–बौना चावल किस्मों की खेती के साथ। कई अर्ध–बौने उच्च उपज वाले चावल की किस्मों को सीआरआरआई, आईआरआरआई और अन्य चावल अनुसंधान संस्थानों से विकसित किया गया था। पानी, मिट्टी, खाद, उर्वरक और जैव–उर्वरक के वैज्ञानिक प्रबंधन के साथ–साथ कीटों और रोगों के वैज्ञानिक प्रबंधन की इन किस्मों और प्रौद्योगिकियों को अपनाने से 1960 के दशक के अंत से 1980 के दशक की शुरुआत तक चावल उत्पादकता और उत्पादन में सफलता मिली। सीआरआरआई में चावल अनुसंधान में समवर्ती प्रगति और आईएआरआई में गेहूं अनुसंधान के कारण, भारत में हरित क्रांति का युग शुरू हुआ। इस प्रकार, भोजन के मामले में आत्मनिर्भरता का मिशन हमारे देश में हासिल किया गया है। 2005, रॉय, 2017, पाठक एट अल, 2018)।

पिछले कुछ दशकों के दौरान, सीआरआरआई (वर्तमान में एनआरआरआई) ने न केवल हमारे देश के सभी लोगों को खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में, बल्कि इसे एक खाद्य आयात करने वाले देश से एक खाद्य निर्यातक देश में बदलने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संस्थान ने 2021 तक तनाव सहिष्णुता के साथ संकर सहित 139 उन्नत और उच्च उपज वाले चावल की किस्में विकसित किया है। हाल ही में मार्च, 2019 में संस्थान ने सूखे, बाढ़ और चक्रवाती हवाओं के प्रति सहिष्णुता वाली 9 और नए उच्च उपज वाले चावल की किस्में विकसित की हैं। वर्ष 1950 में 28 मिलियन हैक्टर में चावल की खेती की जाती थी जबकि वर्तमान भारत में लगभग 43 मिलियन हैक्टर में चवल की खेती होती है। अब 85 प्रतिशत क्षेत्र में उच्च उपज देने वाली किस्मों की खेती होती है। शोधकर्ताओं, किसानों, विस्तार एजेंसियों और नीति निर्माताओं के ठोस प्रयासों के साथ, देश का वार्षिक चावल उत्पादन 1950 में 20 मिलियन टन से 2017–18 में 112 मिलियन टन तक बढ़ गया है। देश प्रतिवर्ष लगभग 10 मिलियन टन चावल का निर्यात कर रहा है। चावल अब प्रमुख विदेशी मुद्रा अर्जक में से एक बन गया है।

लेकिन, हमें इन उपलब्धियों से बहुत प्रसन्न होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि चावल की उपज और इस मामले के लिए, किसी भी फसल की उपज जीन और पर्यावरण पर निर्भर रहता है। अभिनव प्रजनन द्वारा भी विकसित किसी भी उच्च उपज वाले चावल किस्म की उपज की क्षमता, भूमि, मिट्टी, पानी, खाद और उर्वरकों के सतत प्रबंधन, पर्याप्त पौध पोषण और अजैविक और जैविक तनाव से फसल की सुरक्षा के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है। इस संबंध में, डॉ एम.एस. स्वामीनाथन ने ठीक ही कहा है "पृथ्वी सीमित संसाधनों वाला एक अंतरिक्ष जहाज है, जिसे हम अपवित्र या प्रदूषित कर सकते हैं"। गहन कृषि में अधिक मात्रा में फसल उत्पादन सामान्य रूप से पर्यावरणीय गिरावट के साथ जुड़ा हुआ है। परिणामस्वरूप, शोधकर्ताओं और किसानों को जलवायु परिवर्तन, कम पोषक तत्व उपयोग दक्षता, मृदा स्वास्थ्य, कम पानी की उपलब्धता, अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में भूजल स्तर का कम होना, कीटों और बीमारियों के उद्भव और कृषि उत्पादों में कीटनाशक के अवशेष की वृद्धि जैसी नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इसके अलावा, किसानों को कम लाभप्रदता की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इसलिए, एनआरआरआई वर्तमान में उभरती समस्याओं और चुनौतियों का समाधान करने के लिए विभिन्न अनुसंधान कार्यक्रमों को लागू कर रहा है। कृषि अनुसंधान और विस्तार के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए, सरदार पटेल आउटस्टैंडिंग आईसीएआर इंस्टीट्यूशन अवार्ड (2008) और आईसीएआर–बेस्ट एनुअल रिपोर्ट अवार्ड (2016–17) सहित कई पुरस्कार संस्थान ने प्राप्त किए। भाकृअनुप– एनआरआरआई अब किसानों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए अनुसंधान बुनियादी ढांचे के विकास के साथ–साथ नवीन चावल अनुसंधान के संबंध में त्वरित गति से प्रगति कर रहा है।

एनआरआरआई के पूर्व निदेशकों ने अपनी दृढ़ निश्चयता, आग्रह, विभिन्न अवधारणाओं एवं नवोन्मेषी विचारों को मूर्त रूप देकर, चावल अनुसंधान से संबंधित संस्थान में रणनीतिक और परिचालन निर्णय द्वारा संस्थान के अधिदेश को अपनी अथक परिश्रम से सार्थक करके देश में इसे एक अग्रणी संस्थान बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

डॉ के रमैया
(संस्थापक निदेशक)
(1946–1951)

डॉ एसे रामानुजम
(1951–1952)

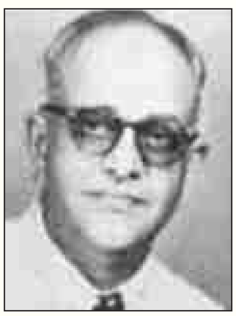

डॉ एन पार्थसारथी
(1952–1956)

डॉ आर एल एम घोष
(1956–1958)

डॉ आर एच रिचारिया
(1958–1966)

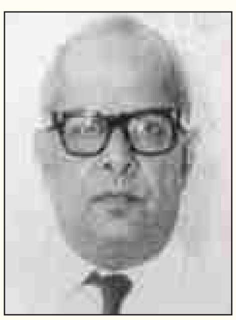

डॉ एस वाई पद्मानाभन
(1966–1976)

डॉ एच के पांडे
(1977–1986)

डॉ आर सीतारमण
(1986–1987)

डॉ एस पटनायक
(1987–1990)

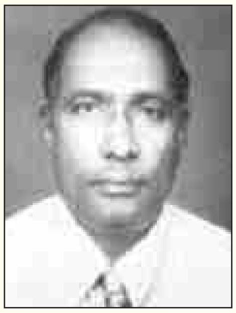
डॉ बी वेंकटश्वरलू
(1992–1995)

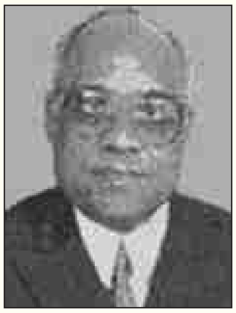
डॉ के सी माथुर
(1995–1999)

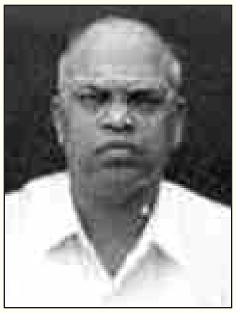
डॉ बी एन सिंह
(2000–2003)

डॉ आर राजामणि
(2003)

डॉ एस जी शर्मा
(2003–2006)

डॉ एम पी पांडेय
(2006–2008)

डॉ टी के आध्या
(2008–2011)

डॉ आनंद प्रकाश
(2011–2012)

डॉ टी महापात्र
(2012–2015)

डॉ ओ एन सिंह
(2015)

डॉ ए के नायक
(2015–2016)

डॉ एच पाठक
(2016–2020)

हमारी राह भले ही भयानक और पथरीली हो,
हमारी यात्रा चाहे कितनी भी कष्टदायक हो,
फिर भी हमें आगे बढ़ना ही है..
सफलता का दिन दूर हो सकता है, पर उसका आना अनिवार्य है....

नेताजी सुभाष चंद्र बोस

भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थानः क्रियाकलाप, उपलब्धियाँ और आकांक्षाएँ

एच पाठक, जयप्रकाश बिसेन और एस के प्रधान

सारांश

भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक ने देश की हरित क्रांति में, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। संस्थान द्वारा अब तक चावल की 139 किस्में और संकर किस्में विकसित की जा चुकी हैं। वर्तमान में, प्रजनक बीज उत्पादन के लिए 20 प्रतिशत एनआरआरआई किस्मों की मांग प्राप्त होती है। भारत में चावल की खेती वाले 18ः क्षेत्र में एनआरआरआई के चावल किस्मों की खेती होती है जिसमें 17ः उत्पादन होता है जिससे वार्षिक 48,643 करोड़ रुपये का सकल लाभ मिलता है। पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए, संस्थान ने हाल ही में विश्व में पहली बार दो उच्च प्रोटीनयुक्त (10.3 प्रतिशत से अधिक प्रोटीन) चावल की किस्में (सीआर धान 310 और सीआर धान 311) विकसित की हैं। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का सामना करने के लिए दो जलवायु–अनुकूल किस्में (सीआर धान 801 और सीआर धान 802), जो जलमग्नता और सूखा सहिष्णु हैं तथा कुछ जैविक तनाव सहिष्णु हैं, भी विकसित किए गए हैं जो कि विश्व में विशिष्ट उपलब्धि है।

संस्थान ने राष्ट्रीय जीन बैंक में 35,600 से अधिक प्रविष्टियों को दीर्घकालिक भंडारण के रूप में और 20,000 से अधिक प्रविष्टियों को एनआरआरआई–जीन बैंक में मध्यम अवधि के भंडारण के रूप में संरक्षित किया है। यह नाइट्रोजन और फास्फोरस उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए माइक्रोबियल फार्मूलेशन को विकसित किय गया है, फसल प्रबंधन के अनुकूलन के लिए सिमुलेशन मॉडल का कैलिब्रेट और प्रमाणित किया गया, पर्यावरण के अनुकूल और आर्थिक उपयोग हेतु चावल के अवशेषों के विकल्पों की पहचान की गई, छोटे और सीमांत किसानों के लिए 30 से अधिक कृषि–उपकरणोंका निर्माण किया गया, एकीकृत कृषि प्रणाली मॉडल विकसित किया गया तथा जलवायु परिवर्तन अनुकूलन और शमन के लिए कई उन्नत तकनीक और रणनीतियां विकसित की गईं। चावल कीटों के विरुद्ध प्रतिरोधिता के नए स्रोतों का पता लगाने के लिए 1,25,000 से अधिक जीनोटाइप का परीक्षण किया गया। संस्थान ने जीवाणुज पत्ता अंगमारी और भूरा पौध माहू के विरुद्ध प्रतिरोधी जीनोटाइप की पहचान की है। संस्थान द्वारा एकीकृत कीट प्रबंधन प्रौद्योगिकियों का विकास किया गया है और भंडारित अनाज कीट के विरुद्ध कीटनाशकों और फॉस्फीन धूमक के लिए पर्यावरण के अनुकूल विकल्प के रूप में पौधे के तेलों की पहचान की। प्रौद्योगिकियों के प्रचार के लिए, राइस एक्सपर्ट नामक एक ऐप विकसित किया है, जिसमें अंग्रेजी, हिंदी, ओडिया और असमी भाषा में चावल फसल से संबंधित समस्याओं के समाधान हेतु जानकारी प्राप्त करने का प्रावधान है। संस्थान ने किसानों की आजीविका में सुधार करके उन्हें समृद्ध करने के लिए तथा चावल विज्ञान में हुई प्रगति के बारे में किसानों को अवगत करने के लिए चावल आत्मनिर्भर सतत बीज प्रणाली (4एस4आर) प्रणाली, किसान प्रक्षेत्र नवाचार संसाधन विज्ञान और प्रौद्योगिकी (फार्मर फर्स्ट), मेरा गाँव मेरा गौरव तथा अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनी जैसे कार्यक्रम शुरू किए हैं। पिछले पांच वर्षों के दौरान संस्थान 144 गांवों तक पहुंचा है, 2,7000 से अधिक किसान परिवारों को लाभ पहुंचाया है, 5 किसान निर्माता कंपनी की स्थापना की, 50 से अधिक कंपनियों के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए, कृषि–सलाहकार सेवाओं के साथ 60000 से अधिक हितधारकों तक पहुंची है, चावल आधारित प्रौद्योगिकियों और कृषि–उद्यमिता पर 5000 व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया और 120 एमएससी और 30 पीएचडी छात्रों का मार्गदर्शन किया। हाल ही में, संस्थान ने चावल अनुसंधान के उभरते हुए क्षेत्रों में अन्य राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों के साथ मिलकर अत्याधुनिक इंफ्रास्ट्रक्चर विकसित किया है। संस्थान उच्च उत्पादकता, लाभप्रदता, जलवायु अनुकूलनीयता और चावल की खेती की स्थिरता के लिए सुपर–उपज (10 टन प्रति हेक्टेयर से अधिक) किस्मों को विकसित करने और लोकप्रिय बनाने के लिए काम कर रहा है।

परिचय

चावल विश्व की सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है, लगभग चार अरब लोगों के लिए प्रधान भोजन है, अर्थात मानव जाति का आधा हिस्सा चावल पर निर्भर करता है (तालिका 1)। उत्तर कोरिया में 440 उत्तर से लेकर ऑस्ट्रेलिया में 350 दक्षिण तक फैले हुए जलवायु परिस्थितियों में चावल के खेत लगभग 160 मिलियन हेक्टेयर में फैले हुए हैं। भारत में इसकी खेती केरल में समुद्र तल के 6 फीट नीचे से लेकर हिमालय में समुद्र तल से 2700 फीट ऊपर तक की जाती है। चावल की

फसल कई एशियाई देशों की संस्कृति और विरासत में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। भारत की लगभग 800 मिलियन आबादी के लिए चावल मुख्य भोजन है (तालिका 1)। यह आहार, अर्थव्यवस्था, रोजगार, संस्कृति और इतिहास में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। यह 65ः से अधिक भारतीय आबादी का मुख्य भोजन है, जो कुल खाद्यान्न उत्पादन में लगभग 40ः का योगदान देता है, चावल लोगों के भोजन और आजीविका सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में 43 मिलियन हैक्टर की भूमि में चावल की खेती की जाती है, 112 मिलियन टन मिल्ड चावल का उत्पादन किया जाता है और 2.6 टन प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादकता है। यह फसल विविध परिस्थितियों में उगाई जाती है जो पहाड़ियों से लेकर तटों तक होती है। मुख्य रूप से यह खरीफ की फसल है जिसकी खेती देश के एक या दूसरे हिस्सों में साल भर की जाती है। चावल के क्षेत्रों का क्षेत्रफल पिछले वर्षों में लगभग अपरिवर्तित रहा है, लेकिन उत्पादन में पांच गुना से अधिक वृद्धि हुई है (चित्र 1)। इसके साथ, भारत ने न केवल चावल में आत्मनिर्भरता हासिल की है, बल्कि निर्यात करने के लिए भी पर्याप्त चावल पैदा करता है। प्रमुख चावल उत्पादक राज्य पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, ओडिशा, आंध्र प्रदेश, बिहार और छत्तीसगढ़ हैं। भारत में लगभग 40ः चावल के क्षेत्र में वर्षाश्रित है और 70ः से अधिक वर्षाश्रित क्षेत्र पूर्वी भारत में हैं। कुल वर्षाश्रित क्षेत्र में से, 23ः वर्षाश्रित क्षेत्र ऊपरीभूमि हैं और 77ः वर्षाश्रित क्षेत्र निचलीभूमि हैं। पूरी ऊपरीभूमि वर्षाश्रित क्षेत्र और 52ः वर्षाश्रित निचलीभूमि क्षेत्रों में सूखा पड़ता है। लगभग 17ः वर्षाश्रित निचलीभूमि क्षेत्र बाढ़ग्रस्त हैं। स्थाई चावल उत्पादन सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने की कुंजी है, विशेष रूप से भारत जैसे देश के लिए। हमें स्थाई विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए चावल प्रणालियों में उत्पादकता, लाभप्रदता, निवेश उपयोग दक्षता और जलवायु अनुकूलनीयता को बढ़ाने की आवश्यकता है। भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान देश का एक प्रमुख अनुसंधान और विकास संस्थान है। यह भुवनेश्वर हवाई अड्डे से लगभग 35 किमी दूर कटक में और कटक–पारादीप राज्य राजमार्ग पर कटक रेलवे स्टेशन से 7 किमी की दूरी पर 20.50 उत्तर, 860 दक्षिण तथा समुद्र तल से 23.5 मीटर की की ऊंचाई पर स्थित है। कटक में वार्षिक वर्षा 1200 मिमी से 1500 मिमी होती है, जो ज्यादातर जून से अक्टूबर (खरीफ या आर्द्र मौसम) के दौरान दक्षिण–पश्चिम मानसून से प्राप्त होती है। नवंबर से मई तक (रबी या शुष्क मौसम) न्यूनतम वर्षा होती है। विश्व की आधी से अधिक आबादी का मुख्य भोजन चावल पर संस्थान आनुवांशिक सुधार, उत्पादन, सुरक्षा, शरीर कार्यिकी विज्ञान और जैव रसायन तथा चावल की फसल को बढ़ावा हेतु काम करता है। हैलमिन्थोस्पोरियम ओराइजा (अब बाइपोलरिस ओराइजा) नामक रोगजनक के कारण बंगाल में हुई भीषण अकाल की पृष्ठभमि में सन् 1946 में संस्थान की स्थापना हुई थी जिसे देश में हरित क्रांति में महत्वपूर्ण योगदान और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा किसानों की आय बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान मिला है। वर्ष 2021 तक एक अनुभवी अनुसंधान संस्थान के रूप में अपनी गरिमामयी एवं लंबे विकास यात्रा के दौरान चावल के सभी पहलुओं पर कार्य करने के लिए संपूर्ण विकसित होकर वैश्विक और राष्ट्रीय हितों के लिए उत्कृष्ट सेवा प्रदान करता है। अपने लंबी 75 वर्षों में राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान ने राष्ट्रीय और वैश्विक कार्यक्रमों के लिए चावल की किस्मों के विकास एवं चावल की फसल के उत्पादन, सुरक्षा के लिए विभिन्न तकनीकों, संसाधन संरक्षण, जलवायु अनुकूलनीयता, पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता संरक्षण, कृषि मशीनीकरण, मानव संसाधन विकास, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी हेतु सहायक सिद्ध हुआ है।

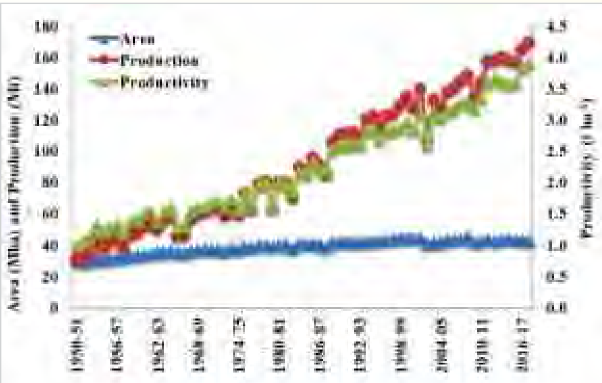

चित्र 1. विगत वर्षों में भारत में चावल का क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता (आंकड़ा 2018 तक का है)

तालिका 1. वैश्विक एवं भारतीय चावल के परिदृश्य

मापदंड	विश्व	भारत
1. उत्पादन (मिलियन टन)	500 (मिल्ड चावल), 750 (धान), 1875 (अवशेष)	112 (मिल्ड चावल), 170 (धान),
2. खाने वाली जनसंख्या (बिलियन)	4 (आबादी की 56%)	0.8 (आबादी की 65%)
3. क्षेत्र (मिलियन हैक्टर)	166 (फसल भूमि की 10%)	43 (फसल भूमि की 22%)
4. किसान परिवार (मिलियन)	144 (किसान के 25%)	67 (किसान के 56%)
5. ग्रामीण गरीबों की जीविका (मिलियन)	400 (गरीबों की 40%)	150 (गरीबों की 40%)
6. वार्षिक मूल्य (यूएस डालर बिलियन)	206 (फसल मूल्य की 13%)	53 (फसल मूल्य की 17%)
7. सिंचाई हेतु जल प्रयोग (किमी^{3}/वर्ष)	880 (कुल के 35%)	200 (कुल के 29%)
8. उर्वरक प्रयोग (मिलियन टन/वर्ष) उर्वरक प्रयोग (मिलियन टन/वर्ष)	25 (कूल के 15%)	6.5 (कुल के 37%)
9. मिथेन उत्सर्जन (मिलियन टन/वर्ष)	25 (कृषि की 12%)	3.5 (कृषि की 18%)

लक्ष्य, मिशन और अनुसंधान के प्रमुख क्षेत्र

संस्थान का लक्ष्य चावल विज्ञान के माध्यम से हमारे राष्ट्र के स्थायी खाद्य और पोषण सुरक्षा और समृद्धि सुनिश्चित करना है। यह चावल की खेती की उत्पादकता, लाभप्रदता और स्थिरता को बढ़ाने के लिए पर्यावरण के अनुकूल प्रौद्योगिकियों को विकसित और प्रसारित करने के मिशन के साथ कार्य करता है। संस्थान के अधिदेश निम्नलिखित हैं:

- विभिन्न चावल पारितंत्रों विशेषकर वर्षाश्रित चावल पारिस्थितिकी तथा उनमें अजैविक प्रभावों पर बल देते हुए चावल उत्पादन में वृद्धि एवं स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु फसल उन्नयन तथा संसाधन प्रबंधन के क्षेत्र में आधारभूत, प्रायोगिक एवं व्यावहारिक अनुसंधान कार्य करना।
- प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता में गिरावट को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त प्रायोगिक अनुसंधान के माध्यम से उपयुक्त तकनीक का विकास करना जिससे सभी पारिस्थितिकी तत्रों में चावल एवं चावल आधारित खेती में उत्पादकता तथा आय वृद्धि सुनिश्चित हो सके।
- चावल जननद्रव्य का संग्रह, मूल्यांकन, संरक्षण एवं आदान–प्रदान करना तथा विभिन्न राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्रों को उन्नत पौध सामग्रियों का वितरण करना।
- विभिन्न खेती परिस्थितियों के लिए समेकित नाशकजीव, रोग तथा पोषण प्रबंधन हेतु प्रौद्योगिकी का विकास करना।
- देश में चावल पर्यावरण का लक्षणात्मक वर्गीकरण प्रस्तुत करना तथा विभिन्न कृषि–पारिस्थितिकीय दशाओं और किसानों की स्थितियों के संदर्भ में चावल उत्पादन में आने वाली भौतिक, जैविक सामाजिक, आर्थिक एंव संस्थागत बाधाओं का मूल्यांकन करना और उनको दूर करने के लिए उपचारात्मक उपायों का विकास करना।
- चावल पारिस्थितिकी, पारितंत्र तथा खेती की दशाओं पर डेटाबेस बनाना तथा पूरे देश के लिए उत्पादन क्षमता और लाभकारिता के आधार पर एक समेकित चावल सांख्यिकी निर्मित करना।
- उन्नत चावल उत्पादन तथा चावल–आधारित फसल एंव खेती प्रणालियों पर चावल शोधकर्ताओं, प्रशिक्षकों तथा विषयवस्तु/विस्तार विशेषज्ञों को प्रशिक्षित करना।

- देश में चावल तथा चावल आधारित फसल एवं खेती प्रणालियों के सभी पहलुओं पर जानकारी संग्रह करना तथा उसे बनाए रखना।

संस्थान में अनुसंधान के महत्वपूर्ण क्षेत्र निम्नप्रकार है।

- अज्ञात क्षेत्रों से चावल जननद्रव्यों की खोज और उनका लक्षण वर्णन, लक्षण–विशिष्ट जननद्रव्य मूल्यांकन और जीन की खोज, एलील खनन और आनुवंशिक सुधार के लिए उनका उपयोग।
- नए प्रकार के पौधों को डिजाइन करना, विकसित करना और परीक्षण करना, नई वंश के चावल और अधिक उपज क्षमता वाली संकर चावल विकसित करना।
- निवेश उपयोग दक्षता के लिए जीन की पहचान और प्रयोग, विविध अजैविक/जैविक तनाव और उत्पादकता लक्षणों के लिए सहिष्णुता।
- आणविक मेजबान परजीवी/रोगजनक परस्पारिकता तथा जैवप्रकार विकास, कीट जीनोम, गैर–मौसम उत्तरजीविता की समझ एवं उपयुक्त नियंत्रण रणनीति तैयार करने के लिए भ्रूणविज्ञान पर गहन अनुसंधान।
- प्रो–विटामिन ए, विटामिन ई, लोहा, जस्ता और प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि सहित पोषक रूप से उन्नतशील चावल की किस्मों का विकास करना।
- विभिन्न चावल पारितंत्रों के लिए जलवायु अनुकूल उत्पादन प्रौद्योगिकियों का विकास, छोटे खेतों के लिए उपयुक्त कुशल फार्म मशीनरी का डिजाइन और व्यावसायीकरण।
- प्रक्षेत्र उत्पादकता और किसान की आय बढ़ाने के लिए कम लागत वाली और पर्यावरण की दृष्टि से स्थायी चावल आधारित एकीकृत फसल/कृषि प्रणाली का विकास।

एनआरआरआई की उपलब्धियां

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना

संस्थान ने अब तक 139 किस्में और संकर चावल विकसित किए हैं (चित्र 2)। देश में लगभग 13: चावल की किस्में एनआरआरआई द्वारा विकसित की गई हैं। लेकिन किसानों ने एनआरआरआई किस्मों को अधिक अपनाया है। वर्तमान देश में 250 में से कृषि और सहकारिता विभाग, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के माध्यम से 55 एनआरआरआई की किस्में, अर्थात 20 प्रतिशत किस्मों की प्रजनक बीज उत्पादन के लिए मांगपत्र प्राप्त होती हैं। संस्थान 460 टन में से लगभग 120 टन प्रजनक बीज अर्थात देश की आवश्यकता का 26% (चित्र 3) का उत्पादन करता है।

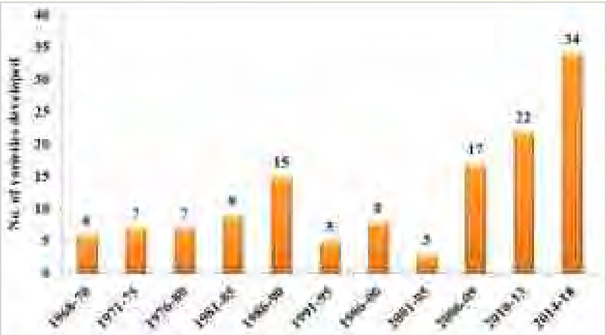

चित्र 2. विगत वर्षों में एनआरआरआई द्वारा विकसित किस्में (आंकड़ा 2018 तक का है)

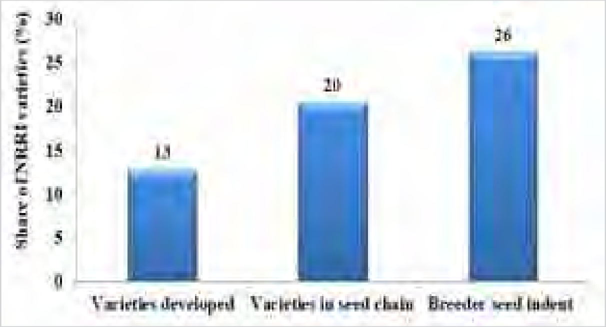

चित्र 3. भारत में कूल चावल किस्मों में एनआरआरआई द्वारा विकसित चावल किस्मों का अंश

भारत में एनआरआरआई द्वारा विकसित चावल की किस्मों की खेती 18: क्षेत्र में की जाती है तथा उत्पादन 17% है

विभिन्न तरीकों के माध्यम से किसानों को प्रदान किए गए गुणवत्ता वाले बीजों की मात्रा के आधार पर देश में खेती की जाने वाली एनआरआरआई की किस्मों के क्षेत्र का अनुमान वर्ष 2017–18 के दौरान इस प्रकार किया गया : कृषि और सहकारिता विभाग को प्रजनक बीज के तिए मांगपत्र, प्रजनक बीज और एनआरआरआई फार्म द्वारा आपूर्ति किए गए विश्वसनीय लेबल वाले बीज, एनआरआरआई द्वारा सहभागी बीज उत्पादन, संस्थान के विभिन्न कार्यक्रमों और परियोजनाओं में वितरित बीज, अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन और ऑन–फार्म परीक्षण, निजी उद्यमियों द्वारा प्रदत्त

एनआरआरआई के किस्मों के बीज और किसानों के बीच प्रसार। वर्ष 2018 के जुलाई–अगस्त के दौरान एनआरआरआई द्वारा विकसित किस्मों की विभिन्न क्षेत्रों में प्रसार का अनुमान करने के लिए एक सर्वेक्षण किया गया था। ओडिशा और पश्चिम बंगाल के जिला कृषि अधिकारियों ने अपने–अपने जिलों में एनआरआरआई किस्मों के कवरेज पर आंकड़ा प्रदान किया। इसके अतिरिक्त, अनुमानों की पुष्टि मान्य करने के लिए कई विशेषज्ञों से परामर्श किया गया था। वर्ष 2017–18 के दौरान देश के 43 मिलियन हैक्टर चावल की खेती भूमि में से, एनआरआरआई की किस्में लगभग 18.0: क्षेत्रों में खेती की गई (चित्र 4)। एनआरआरआई किस्में उगाने वाले प्रमुख राज्य हैं पश्चिम बंगाल (2.25 मिलियन हैक्टर), ओडिशा (2.17 मिलियन हैक्टर) और असम (0.97 मिलियन हैक्टर)। बड़े क्षेत्र वाले अन्य राज्यों के तहत उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड और छत्तीसगढ़ में एनआरआरआई की किस्में शामिल हैं। एनआरआरआई की किस्में किसानों के बीच लोकप्रिय रही हैं और यहां तक कि इनमें से कुछ राज्यों में मुख्य रूप से इसकी खेती की जाती हैं। उदाहरण के लिए, शताब्दी पश्चिम बंगाल में एक प्रमुख किस्म है, ओडिशा में पूजा, असम और त्रिपुरा में नवीन और तमिलनाडु में सावित्री। देश में एनआरआरआई द्वारा विकसित चावल की किस्मों का वार्षिक उत्पादन 18.5 मिलियन टन है, अर्थात देश के कुल चावल उत्पादन का 17%।

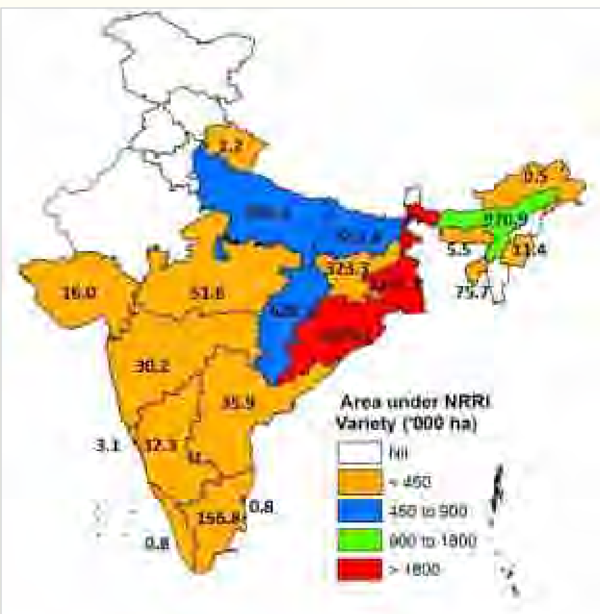

चित्र 4. भारत में एनआरआरआई की किस्मों की खेती की जाने वाले क्षेत्र (आंकड़ा 2018 तक का है)

पोषण सुरक्षा को मजबूत करना

यद्यपि चावल प्रोटीन की मात्रा कम (7–8%) होती है, उच्च पाचनशक्ति और ग्लूटेलिन के बेहतर पोषक गुणों के कारण, चावल अन्य अनाजों से अधिक पोषक होता है। इसलिए, चावल में प्रोटीन की मात्रा को बढ़ाने का प्रभाव बहुत अधिक होगा, विशेषकर उस परिस्थिति में जहां विश्व की एक तिहाई से अधिक बच्चे प्रोटीन–ऊर्जा कुपोषण से प्रभावित हैं। इसके अलावा, यदि चावल की किस्मों को उच्च प्रोटीन के साथ जस्ता सहित सुदृढ़ किया जाता है तो यह चावल आधारित आहार पर निर्भर लोगों के जस्ता–कुपोषण का मुकाबला करने में मदद करेगा।

एनआरआरआई की उच्च प्रोटीनयुक्त, पोषक तत्वों से भरपूर चावल की किस्में

भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक द्वारा उच्च उपज वाली किस्मों जैसे कि स्वर्णा और नवीन में एक उच्च अनाज प्रोटीन दाता (एआरसी10075) का उपयोग करते हुए कई इंट्रोगेशन वंशो को विकसित किया गया और बहुस्थानीय परीक्षण किया गया था। जनकों की तुलना में उनमें से अधिकांश में उच्च स्तर के लाइसिन, थ्रेओनीन, ल्यूसीन, आइसोल्यूसिन, वेलिन, फेनिलएलनिन, ऐलेनिन, प्रोलाइन, ग्लूटेमिक एसिड, आर्जिनिन और कुल अमीनो एसिड का स्तर काफी अधिक था। नवीन की पृष्ठभूमि में, उनमें से अधिक उपज देने वाली (4.5 टन प्रति हेक्टेयर) व्युत्पन्न वंश, सीआर धान 310 को केंद्रीय किस्म विमोचन समिति द्वारा पहली जैवसुदृढ़ीकृत उच्च प्रोटीन (10.2%) वाली चावल किस्म के रूप में विमोचित किया गया है और ओडिशा, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में खेती के लिए अधिसूचित किया गया है।

इसके बाद, उच्च प्रोटीन (10.1%) और मध्यम उच्च जस्ता वाली (20 पीपीएम) मात्रा सहित एक और पोषक तत्व–समृद्ध किस्म सीआर धान 311 (मुकुल) को राज्य किस्म विमोचन समिति, ओडिशा द्वारा विमोचित की गई और 2019 में भारत सरकार द्वारा अधिसूचित की गई। इन उच्च प्रोटीन किस्मों में नवीन की तुलना में काफी अधिक ग्लूटेलिन मात्रा थी। एआरसी10075/नवीन से एक बैकक्रॉस व्युत्पन्न मानचित्रण संख्या के एसएनपी जीनोटाइपिंग का उपयोग करके, गुणसूत्र 1 पर एक सुसंगत क्यूटीएल (qGPC1.1) की पहचान की गई थी, जो एक ग्लूटेलिन परिवार प्रोटीन को एन्कोडिंग करता है। उच्च प्रोटीन किस्मों सीआर धान 310 और सीआर धान 311 में

भी यह क्यूटीएल शामिल था। उच्च प्रोटीन चावल की किस्मों को आसानी से कम प्रोटीन आवर्तक जनक जैसे कि नवीन से जैन्थोनोप्रोटीक परीक्षण की मदद से अलग किया जा सकता है। दोनों किस्मों में हेड राइस रिकवरी (60: से अधिक) और मध्यवर्ती अमाइलोज मात्रा (22–24%) के साथ स्वीकार्य अनाज और खाना पकाने की गुणवत्ता है। ओडिशा, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा, असम, झारखंड और गोवा में एक लोकप्रिय किस्म, नवीन के साथ अनाज और पौधों के प्रकार के समानता के कारण उच्च प्रोटीन किस्मों को किसानों द्वारा बहुत अपनाया गया है।

सीआर धान 310 (आईईटी 24780: सीआर2829–पीएलएन–37)

इसे ओडिशा, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों के लिए पहली उच्च प्रोटीन चावल किस्म के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर विमोचित किया गया था। यह मध्यम अवधि (120–125 दिन) वाला है, दाने मध्यम पतले और अच्छे अनाज गुणवत्ता (तालिका 2) के साथ अर्ध–बौने पौधे का प्रकार (110 सेमी) है। यह सिंचित और अनुकूल उथले वर्षाश्रित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। अनाज की उपज का राष्ट्रीय औसत 4.5 टन/हैक्टर है और इसके पॉलिश चावल में औसत 10.2% प्रोटीन होता है।

सीआर धान 311 (मुकुल द्वए आईईटी 24772: सीआर2829–पीएलएन–100)

इसे राष्ट्रीय स्तर पर पोषक तत्वों से भरपूर चावल के रूप में विमोचित किया गया और भारत सरकार द्वारा अधिसूचित किया गया है। इसमें उच्च प्रोटीन सामग्री (10.1 प्रतिशत और पॉलिश चावल में 10 प्रतिशत जस्ता मात्रा (20 पीपीएम) का मध्यम स्तर है। इसकी अवधि मध्यम (120–125 दिन) है, अर्ध–बौने पौधे का प्रकार (115 सेमी) है, दाने मोटे एवं लंबे है तथा अच्छे खाना पकाने और खाने की गुणवत्ता है (तालिका 2) है। यह सिंचित और अनुकूल उथले वर्षाश्रित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसकी राष्ट्रीय औसत उपज 4.3 टन प्रति हेक्टेयर है और ओडिशा में यह 5.5 टन प्रति हेक्टेयर है।

तालिका 2. सीआर धान 310 एवं सीआर धान 311 की विशेषताएं

विशेषताएं	सीआर धान 310	सीआर धान 311
पौधे की ऊँचाई (सेमी)	110	115
पौधे का प्रकार	अर्ध–बौना	अर्ध–बौना
दौजियां/पौध	12	10
बालियों की संख्या/वर्गमीटर	311	256
50% फूल लगने के लिए दिन	97	95
बीज से बीज की अवधि (दिन)	125	123
बाली प्रकार	ठोस	ठोस
बाली गठन	बहुत अच्छा	बहुत अच्छा
शूक	नहीं	नहीं
एपिकुलस रंग	पुआल	पुआल
लेम्मा पलिया रंग	पुआल	पुआल
1000 अनाज वजन (ग्राम)	24	26

दाना लंबाई मिमी (मिमी)	5.49	6.26
दाना चौड़ाई (मिमी)	2.06	2.21
लंबाई ध्चौड़ाई अनुपात	2.66	2.83
दाना प्रकार	मध्यम पतला	लंबा मोटा
सफेदपन	बहुत कम	बहुत कम
कुटाई के बाद चावल प्राप्ति (%)	71.9	69.0
पूर्ण चावल प्राप्ति (%)	64.7	60.1
क्षार प्रसार मूल्य	5.0	5.0
अमाईलोज मात्रा (%)	25.1	23.7
चिपचिपापन (मिमी)	37	24

किसानों की आय बढ़ाना

एनआरआरआई की चावल किस्मों की खेती से 48,643 करोड़ रुपये का सकल आय अर्थात भारत का 13: सकल उत्पन्न होता है। एनआरआरआई किस्मों से चावल का वार्षिक वृद्धिशील उत्पादन 1.4 मिलियन टन है जो कि किसानों की आय लगभग 2,432 करोड़ का लाभ प्रदान करता है (पाठक एट अल, 2018 ए)।

जलवायु अनुकूलनीयता बढ़ाना

जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए, एनआरआरआई ने चावल की किस्मों का विकास किया है जो विभिन्न जैविक और अजैविक तनाव की स्थिति में बेहतर प्रदर्शन करते हैं और जिससे किसानों को कम नुकसान होता है। इनमें से कुछ जलवायु–अनुकूल किस्में तालिका 3 में दी गई हैं। संस्थान ने स्वर्णा किस्म की पृष्ठभूमि में जलमग्नता के साथ सूखा सहिष्णुता क्षमता वाली सीआर धान 801 और सीआर धान 802 किस्में विकसित की हैं। विश्व स्तर पर ये किस्में चावल अनुसंधान में पहली बार विकसित की गई हैं और अद्वितीय है तथा इन्हें भारत सरकार द्वारा विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है।

तालिका 3. एनआरआरआई, कटक द्वारा विमोचित जलवायु–अनुकूल चावल किस्में

तनाव	किस्म	अवधि (दिन)	दाना प्रकार *	उपज (टन/हैक्टर)
जलमग्नता एवं सूखा	सीआर धान 801 सीआर धान 802 (सुभाष)	140-145 142	छोटा मोटा छोटा मोटा	6.3 6.5
सूखा	सत्यभामा	110	मध्यम पतला	2.3-4.7
	अंकित	110	मध्यम पतला	3.98
	सहभागीधान	105	लंबा मोटा	3.5-4.0
	आईआर 64 डीआरटी 1	120	लंबा पतला	5.5-6.0

जलमग्नता	स्वर्णा–सब1	145	मध्यम पतला	5.2
	वर्षाधान	160	लंबा मोटा	3.5-4.0
	सीआर धान 502 (जयंतीधान)	135	लंबा पतला	4.0
	सीआर धान 500	155	मध्यम पतला	4.0
	सीआर धान 408	160	लंबा मोटा	4.5
	सीआर धान 409	160	लंबा पतला	5.0
	जलमणि	160	मध्यम पतला	4.6
लवणता	लुणीश्री	145	लंबा पतला	4.75
	लुणा सुवर्णा	150	मध्यम पतला	3.5-4.0
	लुणा संखी	110	मध्यम पतला	4.6
	लुणा बरियल	150	छोटा मोटा	4.1

स्वर्णा किस्म की पृष्ठभूमि में मार्कर–असिस्टेड बैकक्रॉस ब्रीडिंग का उपयोग करके सूखा तनाव के तहत सीआर धान 801 और सीआर धान 802 की किस्मों में जलमग्नता सहिष्णुता के लिए सब1 जीन और उपज के लिए qDTY1.1, qDTY2.1 और qDTY3.1 क्यूटीएल शामिल किए गए थे। प्राप्तकर्ता जनक में जीनोम 95 प्रतिशत से अधिक थी। वे 140–145 दिनों की औसत परिपक्वता अवधि के साथ प्रकाशसंवेदनशीलता के प्रति कमजोर हैं। किस्में तना छेदक, पत्ती मोड़क, पौध माहू और केस वर्म के संक्रमण के लिए प्रतिरोधी हैं, जबकि जीवाणुज अंगमारी, आच्छद विगलन एवं राइस टुंग्रो वायरस के लिए प्रतिरोधी हैं। इनमें प्राप्तकर्ता जनक स्वर्णा की तरह अच्छी हलिंग, मिलिंग और हेड राइस रिकवरी होती है और इसमें मध्यवर्ती अमाइलोज मात्रा, छोटे एवं मोटे दाने और अन्य वांछनीय अनाज गुणवत्ता हैं। इन किस्मों की कटाई और प्रसंस्करण के साथ–साथ खेती की प्रथाएं, कीट और रोग नियंत्रण, आमतौर पर चावल की अन्य उच्च उपज वाली किस्मों के समान हैं।

जलवायु अनुकूल चावल किस्म सीआर धान 801 (आईईटी 25667)

आईआर81896–बी–बी–195 / 2'स्वर्णा–सब1 / आईआर916 59–54–35 के क्रॉस की प्रजनन सामग्री से इस किस्म को विकसित किया गया था। इस किस्म को ओडिशा, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और तेलंगाना राज्यों के लिए विमोचित किया गया है। इसका वजन 20.5 ग्राम (तालिका 4) है एवं छोटा मोटा दाना है। सामान्य स्थिति के तहत लगभग 6.3 टन प्रति हेक्टेयर और जलमग्न परिस्थितियों में 4.0 टन प्रति हेक्टेयर की दर से उपज मिलती है जबकि सूखे की स्थिति में 2.9 टन प्रति हेक्टेयर उपज मिलती है।

जलवायु अनुकूल चावल किस्म सीआर धान 802 (सुभाषः आईईईटी 25673)

स्वर्णा–सब1'4 / आईआर81896–बी–बी–195 के क्रॉस की प्रजनन सामग्री से इस किस्म को विकसित किया गया था। कटक में जन्मे स्वतंत्रता सेनानी और भारत के महान सपूत नेताजी सुभाष चंद्र बोस के नाम 'सुभाष' दिया गया है। इस किस्म को मध्य प्रदेश और बिहार राज्यों के लिए विमोचित किया गया है। इसका वजन 19.0 ग्राम (तालिका 4) है एवं छोटा मोटा दाना है। सामान्य स्थिति के तहत लगभग 6.5 टन प्रति हेक्टेयर और सूखा परिस्थितियों में 2.3 टन प्रति हेक्टेयर की दर से उपज मिलती है।

तालिका 4. जलवायु अनुकूल चावल किस्में सीआर धान 801 एवं सीआर धान 802 की विशेषताएं

लक्षण	सीआर धान 801	सीआर धान 802
पौधे की ऊँचाई (से.मी.)	87	102
फूल लगने के दिन	112	110
परिपक्वता अवधि (दिन)	140-145	140-145
1000-दाना वजन (ग्राम)	20.5	19.0
गिरने की प्रवृत्ति	गिरता नहीं हैं	गिरता नहीं हैं
बाली प्रकार	मध्यम	मध्यम
बाली गठन	अच्छी	अच्छी
शूक	बिना शूक	बिना शूक
छिलका (%)	79.6	77.85
कुटाई (%)	69.9	70.2
मुख्य चावल की प्राप्ति (%)	66.2	64.25
दाना लंबाई (मिमी)	5.15	5.0
दाना चौड़ाई (मिमी)	2.22	2.16
लंबाई/चौड़ाई अनुपात	2.31	2.31
दाना प्रकार	SB	SB
अनाज सफेदीपन	बहुत कम	बहुत कम
क्षार प्रसार मूल्य	4.0	4.5
अमाईलोज मात्रा (%)	25.13	25.0
चिपचिपापन (मिमी)	39	39.5

जल बचत वाली चावल की किस्में

संस्थान ने ''एरोबिक'' चावल की किस्में विकसित की हैं, जिसकी खेती कम पानी के साथ हो सकती है और काफी अधिक पैदावार के साथ पानी की बचत होती है। एनआरआरआई की जल बचत वाले एरोबिक चावल किस्मों को तालिका 5 में सूचीबद्ध किया गया है।

तालिका 5. एनआरआरआई, कटक द्वारा विमोचित जल–बचत वाली किस्में

किस्म	अवधि	दाना प्रकार	उपज
सीआर धान 200	118	छोटा मोटा	4.5
सीआर धान 201	118	लंबा पतला	4.0
सीआर धान 202	115	लंबा मोटा	4.0
सीआर धान 203	110	लंबा पतला	4.0
सीआर धान 205	110	छोटा मोटा	4.1
सीआर धान 206	115	छोटा मोटा	4.0
सीआर धान 207	115	मध्यम पतला	4.0
सीआर धान 209	115	लंबा पतला	4.0

उर्वरक की बचत करने वाली प्रौद्योगिकियाँ

नाइट्रोजन के नुकसान को कम करने और इसकी उपयोग दक्षता को बढ़ाने के लिए सही समय और सही मात्रा पर प्रयोग करने के लिए एनआरआरआई द्वारा कस्टमाइज्ड लीफ कलर चार्ट विकसित किया गया है। यह चार्ट देश के विभिन्न राज्यों में लोकप्रिय हुआ है। संस्थान ने यूरिया ब्रिकेट और इसके एप्लिकेटर को भी विकसित किया, जो ब्रिकेट को मिट्टी में उपयुक्त स्थान पर डालता है जिससे नुकसान कम होता है।

संसाधनों का संरक्षण करने वाली प्रौद्योगिकियाँ

संस्थान पूर्वी भारत में निचलीभूमि चावल क्षेत्रों के लिए संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों को विकसित करने और परिष्कृत करने में सबसे आगे रहा है। एनआरआरआई द्वारा पहले के कई काम रोपित एवं सीधी बुआई परिस्थितियों के तहत प्राकृतिक संसाधनों की उपयोग दक्षता में सुधार, ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी, चावल की उत्पादकता बढ़ाने और कार्बन के निर्माण के साथ–साथ सीधी बुआई, चावल की गहन खेती प्रणाली, फलीदार फसलों द्वारा कृषि प्रणाली अनुसंधान, चावल अवशेष प्रबंधन, न्यूनतम जुताई और शून्य जुताई से संबंधित अनुसंधान से संबंधित तकनीकों को विकसित करने पर केंद्रित थे। संस्थान ने बुआई और निराई हेतु छोटे और मध्यम किसानों के लिए कृषि उपकरणों के डिजाइन और विकास पर भी काम किया।

एकीकृत कृषि प्रणाली मॉडल

संस्थान ने वर्षाश्रित निचलीभूमि क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता, कुल आय और रोजगार में सुधार के लिए चावल–मछली विविध कृषि प्रणाली की अवधारणा, डिजाइन और उत्पादन तकनीक विकसित की है। इस तकनीक को ओडिशा, पश्चिम बंगाल, पूर्वी उत्तर प्रदेश और असम के किसानों ने अपनाया है। संस्थान के तीन अपनाए जाने वाले मॉडल हैं: (1) अर्ध–गहरा (50 सेमी पानी की गहराई तक) चावल–मछली विविध कृषि प्रणाली, (2) गहरे पानी के लिए (1 मीटर तक या अधिक पानी की गहराई) बहु–स्तरीय चावल–मछली बागवानी फसल आधारित कृषि प्रणाली और (3) सिंचित निचलीभूमियों के लिए चावल आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली। किसानों की भागीदारी मोड (एफपीएम) के माध्यम से इन चावल आधारित कृषि प्रणालियों के मॉडल को किसानों के खेत में मान्य और अद्यतन किया गया है। उच्चतर भूमि और पानी की उपलब्धता से इन प्रणालियों से कृषक समुदायों के लिए खाद्य, पोषण और आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित होती हैं, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों के परिवार के सदस्यों के शामिल होने से रोजगार सृजन भी होता है।

उत्पादकता में वृद्धि, जैव संसाधन प्रवाह, संसाधन पुनर्चक्रण और पर्यावरणीय प्रभाव के लिए चावल और गैर–चावल फसलों के बीच परस्पर क्रिया का आकलन किया गया है। तालाब में एकमात्र मछली पालन के बजाय चावल के साथ एकीकृत होने पर मछली की उत्पादकता अधिक थी। कम दूरी या यादृच्छिक रोपण की अपेक्षा धान पौधों को अधिक अंतर के साथ रोपाई करने से मछली की उत्पादकता बढ़ गई। चावल मछली प्रणाली में मछली मल के लगातार बढ़ने से मिट्टी के जैविक कार्बन में वृद्धि हुई। चावल के खेत में मछली प्रणाली

के साथ मीथेन का उत्सर्जन बढ़ा लेकिन नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन केवल फसल परिपक्वता के समय जब खेत अधिकांशः सूख जाते है, को छोड़कर पूरे फसल अवधि के दौरान अपेक्षाकृत कम था। मछली प्रमुख चावल कीटों जैसे पौध माहू, केस वर्म, तना छेदक, गाल मिज, पत्ता मोड़क और घोंघे के लिए प्रभावी जैव–नियंत्रण कारक के रूप में कार्य करती हैं। कीटनाशक (फॉस्फैमिडन, मोनोक्रोटोफोस, क्विनालफोस, एथोफेनप्राक्स, कार्बोफ्यूरान) हालांकि, पाले हुए मछलियों (कॉमन कार्प, कैटला, मृगल) को तुरंत नहीं मारते, लेकिन वृद्धि, उत्तरजीविता और पैदावार पर अलग–अलग घातक प्रभाव डालते हैं। मछलियों की कुशल प्रजातियां हैं केटनोफरीन गोडोनिडेला, पुंटियस गोनियोनोटस, ओरोक्रोमिस मोसंबिकस, ट्रिचोगेस्टर पेक्टोरलिस और साइप्रिनस कारपी, जो सीधे तौर पर खरपतवार को खाकर या अप्रत्यक्ष रूप से पानी की टरबिडीटी में वृद्धि करके या उनको अपनी गति से चाटिल करके नियंत्रित करते हैं।

तालाब में संग्रहित पानी का उपयोग करके 2–3 सीमित सिंचाई के साथ चावल के बाद सूरजमुखी सबसे अधिक उपयोगी फसलों में से एक है। इस प्रणाली में जनवरी के मध्य में स्पॉट सिंचाई के साथ गड्ढों में बुवाई के दौरान इस प्रणाली में तरबूज एक और उपयुक्त फसल पाई गई। पूर्वी भारत में मानसून की अवधि (जुलाई–सितंबर) के दौरान वर्षा जल संचयन की संभावना होती है, जो तालाब व जलाश्रय में संग्रहित जल से कद्दू, करेला, भिंडी और मिर्च या तो बांध या मुख्य चावल के खेत में कई शीतकालीन सब्जियां उगाने में मदद कर सकता है। अन्य फसलें जैसे उरद दाल और मूंग या तिलहन अर्थात सूरजमुखी, मूंगफली और तिल को सूखे मौसम (जनवरी–अप्रैल) में संग्रहित पानी से सीमित सिंचाई के साथ उगाया जा सकता है।

जैव विविधता संरक्षण और उपयोग

संस्थान ने 35,000 चावल जीनप्ररूप संरक्षित किए हैं, जिन्हें देश के विभिन्न भागों से एकत्र किया जाता है। संस्थान न केवल जीनप्ररूपों का संग्रह और संरक्षण करता है, बल्कि उनके पुनरुद्धार और लक्षण वर्णन में भी शामिल है। अभी तक लगभग 53,311 जननद्रव्यों का पुनरुद्धार किया गया और रूपात्मक विश्लेषण के माध्यम से इनके लक्षणों को चिन्हित किया गया। इसके अलावा, संस्थान द्वारा वनस्पति और प्रजनन चरण सूखा तनाव दोनों के लिए सहिष्णुता वाली अनूठा गुण सहित विशिष्ट जननद्रव्यों की पहचान की गई तथा पादप जननद्रव्य पंजीकरण समिति, एनबीपीजीआर, नई दिल्ली में पंजीकृत किया गया। सालकाथी (आईसी 0256801), एक स्थानीय भूमिजाति को भूरा पौध माहू प्रतिरोधी और चावल के विविध कीट प्रतिरोधी को भी चावल जननद्रव्य के रूप में पंजीकृत किया गया।

फसल सुरक्षा तकनीक

फसलों में कीटों और रोगों का प्रकोप नियमित रूप से होता है, जो किसान और फसलों को भी गंभीर नुकसान पहुंचाते हैं। संस्थान ने फाल्स स्मट कंड रोग के रोगजनक अलगाव की कृत्रिम संरोपण पद्धति, चावल बकाने रोग के लिए परीक्षण तकनीक, चावल के जीवाणुज अंगमारी के विरुद्ध प्रतिरोधिता प्रेरित करने के लिए राइबोफ्लेविन की खुराक, चावल के कई कीटों और उसके प्राकृतिक शत्रुओं का डीएनए बारकोडिंग, भंडारित अनाज कीट के विरुद्ध तैयार फॉस्फीन फ्यूमिगेंट जैसे विभिन्न प्रक्रियाओं और सूत्रणों का मानकीकरण किया है। संस्थान ने कुछ वानस्पतिक आधारित उत्पादों की परिकल्पना की और उन्हें फसल सुरक्षा के लिए प्रौद्योगिकियों में परिवर्तित किया। इनमें वैकल्पिक सौर ऊर्जा प्रकाश जाल, जांथोमोनास ओराइजा एवं राइजोक्टोनिया सोलानी के विरुद्ध प्रभावपूर्ण सिल्वर नैनो कण तथा ट्राइकोडर्मा एसपी जो मिट्टी और बीज जनित रोगजनकों को मारने की क्षमता वाला एक विकास प्रवर्तक है, शामिल हैं। चावल के बकाने रोग के लिए प्रतिरोधी जीनोटाइप (एफएल–478, एएसडी–18, वंदना), आच्छद अंगमारी (सीआर–1014), जीवाणुज पत्ता अंगमारी (जलमग्न), सफेदपीठवाला पौध माहू (एसी34222, एसी34264, एसी38468 और एसी42425), भूरा पौध माहू (सालकाठी और धोबानंबरी) और गाल मिज (अगन्नी और आईएनआरसी 3021) की भी पहचान की गई है।

प्रक्षेत्र मशीनीकरण

भाकृअनुप–एनआरआरआई देश में कृषि मशीनीकरण का प्रबल समर्थक है और संस्थान ने विभिन्न कृषि कार्यों के लिए बुआई से लेकर कटाई और प्रसंस्करण तक कई किसान अनुकूल और कम लागत वाली कृषि उपकरण तैयार किए हैं (चित्र 5)। संस्थान द्वारा विकसित विभिन्न छोटे कृषि उपकरण उनको प्रयोग करने में आसानी होने और कम लागत के कारण देश के छोटे और सीमांत किसानों को मशीनीकृत करने की जबरदस्त क्षमता है।

चित्र 5. विभिन्न कृषि कार्यों के लिए एनआरआरआई द्वारा विकसित कृषि उपकरण

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी

आज विश्व में सभी कार्य डिजिटल माध्यम से किए जाते हैं, जो सूचना और ज्ञान बांटने के लिए एक प्रमुख संचालक के रूप में उभरा है। भारत सरकार के "डिजिटल इंडिया" अभियान के अनुरूप, संस्थान ने किसानों की जरूरतों पर ध्यान देने के साथ "राइसएक्सपर्ट" नाम से एक एंड्रॉइड ऐप विकसित किया है। "राइसएक्सपर्ट" किसानों को न केवल पोषक तत्वों की कमी और विषाक्तता, खरपतवार, कीट और रोग प्रबंधन के बारे में जानकारी प्राप्त करने में सहायता करता है बल्कि उर्वरक और कीटनाशक की सटीक खुराक के बारे में भी जानकारी देता है, जिसमें उर्वरक और कीटनाशक गणक शामिल हैं। साथ ही, ऐप विभिन्न कार्यों के लिए कृषि उपकरणों की जानकारी प्रदान करता है और उन्हें निवेशों और उत्पादन के लिए बाजार प्लेटफार्मों पर अद्यतन करता है। राइसएक्सपर्ट ग्रामीण जनता के बीच बेहतर पैठ के लिए हिंदी, ओडिया, अंग्रेजी और असमी चार अलग–अलग भाषाओं में उपलब्ध है।

ग्रामीण भारत को बीज क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाना

भारतीय कृषि ने विश्व पटल पर अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। यद्यपि यह कृषि उत्पादन में विश्व में नेतृत्व ले चुका है, लेकिन कई फसलों में इसकी उत्पादकता विश्व औसत से बहुत कम है। किसानों के पास गुणवत्तापूर्ण बीजों की अनुपलब्धता इसके पीछे कई कारणों में से एक है। इसलिए, संस्थान ने ग्रामीण भारत को बीज क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के लिए एक प्रमुख उद्देश्य सहित चावल आत्मनिर्भर सतत बीज प्रणाली (4S4R) की अवधारणा, विकसित और कार्यान्वित की है।

सूक्ष्मजैविक प्रौद्योगिकियां

संस्थान ने एंडोफाइटिक और राइजोस्फेरिक नाइट्रोजन निर्धारण के लिए सूक्ष्मजैविक सूत्रण विकसित किए हैं, तरल सूत्रण वाले दो फॉस्फेट सॉल्यूबलिंग बैक्टीरिया, दो एक्सो–पॉली–सैकराइड बैक्टीरिया उत्पादक और मृदा जनित बीमारियों के जैव नियंत्रक कारक हैं। उपरीभूमि सीधी बुआई धान में फॉस्फोरस पोषण में सुधार करने के लिए देशी एरोबस्कुलर माइकोरिजा सहायक फसल–संवर्धन घटकों का उपयोग कर प्रौद्योगिकी तकनीक विकसित किया गया है।

ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन, जलवायु परिवर्तन अनुकूलन और शमन

एनआरआरआई में 1980 के दशक से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन और जलवायु परिवर्तन से संबंधित कार्य शुरू किए गए थे। प्रारंभिक कार्य ज्यादातर चावल आधारित उत्पादन प्रणालियों से मीथेन उत्सर्जन के अनुमान और मीथेन उत्सर्जन के शमन विकल्प पर केंद्रित थे। मुख्य रूप से, वर्षाश्रित और सिंचित परिस्थितियों दोनों में चावल–चावल, चावल–दलहन, चावल–तिलहन और चावल–मछली प्रणालियों का अध्ययन किया गया। सामान्य तौर पर, सिंचित प्रणाली की तुलना में वर्षाश्रित क्षेत्रों में मीथेन उत्सर्जन काफी कम था। एरोबिक प्रणाली में, मीथेन उत्सर्जन की भारी कमी थी। वर्ष 2004 के बाद एनआरआरआई, कटक में, नाइट्रस ऑक्साइड और कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन पर ज्यादातर अध्ययन किया गया था। पूर्वी भारत में चावल आधारित प्रणाली में नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन 0.22 से 1.75 किलोग्राम प्रति हैक्टर के बीच था। निचलीभूमि पारितंत्र के चावल उत्पादन प्रणाली में मुख्य रूप से कम अनुकूल ऑक्सी–एनॉक्सिक चक्र, कम नाइट्रोजन प्रयोग और निरंतर जलमग्नता के कारण सामान्य रूप से नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन कम हुआ जबकि कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन 1000–1450 किलोग्राम प्रति हैक्टर की सीमा में पाया गया था।

मानव संसाधन विकास

संस्थान किसानों, छात्रों और विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के अधिकारियों को प्रशिक्षण प्रदान करता है और इस तरह उन्हें उनकी क्षमता निर्माण में सहायता करता है। दिए गए आंकड़े पिछले पांच वर्षों में आयोजित किए गए कई क्षमता निर्माण कार्यक्रमों और उनके लाभार्थियों पर एक दृष्टि प्रदान करते हैं। संस्थान में 77 एमएससी और पीएचडी छात्र अध्ययनरत हैं। एनआरआरआई–आईआरआरआई छात्र फैलोशिप कार्यक्रम शुरू किया गया था जिसमें एमएससी 2 एमएससी और 8 पीएचडी छात्रों को फेलोशिप प्रदान किया जा चुका है। संस्थान विशेष दिवसों का पालन करता है, कार्यशालाओं, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों और अन्य चर्चा और प्रचार गतिविधियों का आयोजन करता है (चित्र 6)।

चित्र 6. प्रशिक्षण कार्यक्रमों की संख्या और उनके लाभार्थी

चित्र 7. विगत वर्षों में एनआरआरआई के प्रकाशन

मूलभूत विज्ञान में उपलब्धियां

संस्थान ने मूलभूत विज्ञान में शानदार उपलब्धियां हासिल की हैं। इनमें से कुछ उपलब्धियां संकर और पैतृक वंशों में सुधार, आणविक मार्करों का विकास, रीसीक्वेसिंग के माध्यम से जीनोमिक संसाधनों का विकास, जीन क्लोनिंग और विभिन्न वैज्ञानिक तरीकों का मानकीकरण और विभिन्न लक्षणों के लिए जननद्रव्यों का परीक्षण है। हाल ही में, संस्थान ने मध्यवर्ती ग्लाइसेमिक इंडेक्स (जीआई) मूल्य ; 60) सहित स्वर्णा और महसूरी किस्मों की पहचान की तथा चावल में जीआई के निर्धारण के लिए इन विट्रो विधि में सुधार और प्रजनन को विकसित किया। एफआर 13ए, कलापुटिया और स्वर्णा–सब 1 में पत्ता सतहों पर सबसे अधिक मात्रा में पत्ता गैस फिल्म मौजूदगी हेतु जलमग्न सहिष्णुता की क्रियाविधि को परिभाषित किया। चावल में प्रजनन चरण लवण सहिष्णुता के लिए नमक और पोटाश़ ट्रांसपोर्टरों की भी पहचान की गई है। छह एआरसी प्रविष्टियों (एआरसी 7336, एआरसी 7343, एआरसी 10260, एआरसी 10304, एआरसी 10314 और एआरसी 11124) और पांच उच्च उपज देने वाली किस्में (कल्याणी 2, आईआर 64 एमएएस, कलिंग–II, सीएसआर 18 और कृष्णांसा) को सूखा सहिष्णु दाताओं के रूप में खोज की गई।

प्रकाशन

संस्थान ने हाल के वर्षों में गुणवत्ता वाले शोध प्रकाशनों एवं उनकी संख्या के मामले में महत्वपूर्ण प्रगति की है (चित्र 7)। एनआरआरआई प्रकाशनों का औसत एनएएएस स्कोर 7.01 (औसत प्रभाव फैक्टर 1.01) है। प्रति वर्ष प्रति वैज्ञानिक प्रकाशनों की संख्या 1.88 है। इसके अलावा, कई पुस्तकें, तकनीकी बुलेटिन और पत्रक प्रकाशित हुए हैं। संस्थान नियमित रूप से अपनी वार्षिक रिपोर्ट और समाचार पत्र प्रकाशित करता है, जो त्रैमासिक रूप से प्रकाशित होता है।

विशिष्ट परिणाम

संस्थान ने 75 वर्ष के अपने विकास यात्रा के दौरान प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण मील के पत्थर प्राप्त किए हैं। वर्षों से संस्थान की उपलब्धियों ने राष्ट्रीय कृषि परिदृश्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है।

- देश में चावल का उत्पादन बढ़ा : 2019–2020 के दौरान चावल का उत्पादन 117.47 मिलियन टन का सर्वकालिक उच्च उत्पादन हुआ है। महसूरी, पद्मा, रत्ना, सावित्री (सीआर 1009), सीआर 1014, पूजा और नवीन देश में चावल उत्पादन बढ़ाने में बहुत योगदान है।
- उन्नत जलवायु–अनुकूल चावल उत्पादन : जलवायु–अनुकूल किस्मों (सीआर धान 801, सीआर धान 802, सहभागी धान) और संस्थान द्वारा विकसित प्रबंधन प्रथाओं ने प्रतिकूल जलवायु वर्षों के दौरान भी चावल उत्पादन में स्थिरता सुनिश्चित की है।
- पोषक तत्वों के उपयोग की क्षमता में वृद्धि और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी: लेपित उर्वरक और अनुकूलित पत्ता रंग चार्ट वाली संसाधन–संरक्षण तकनीक से 10–15 प्रतिशत नाइट्रोजन उपयोग दक्षता बढ़ाती है, ग्रीनहाउस हाउस के लगभग 15–20 प्रतिशत उत्सर्जन कम होती है और 0.5–1.0 टन प्रति हैक्टर उपज बढ़ जाती है। इस प्रौद्योगिकी द्वारा यूरिया के प्रयोग को 25 प्रतिशत तक कम कर सकती है और उर्वरक सब्सिडी में प्रति वर्ष 1500 करोड़ रुपये तक बच सकती है।
- किसानों के रोजगार और आय में वृद्धि : लगभग 6.7 करोड़ किसान–परिवार कृषि पर आश्रित हैं और देश में चावल की खेती में 16 करोड़ मजदूर कार्यरत हैं। संस्थान द्वारा विकसित चावल आधारित कृषि प्रणाली प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति 200–300 मानव–दिन उत्पन्न करता है। चावल के

मूल्य–श्रृंखला में सभी हितधारकों (किसानों, स्वयं सहायता समूहों, बीज उत्पादकों, मिलर्स, संस्थान) और किसानों की भागीदारी बीज उत्पादन प्रणाली शामिल हैं, जिससे किसानों की उत्पादकता और आय में वृद्धि हुई है।

- चावल विज्ञान में विकसित मानव संसाधन : प्रत्येक वर्ष लगभग 75 छात्र संस्थान में स्नातकोत्तर शोध कार्य करते हैं। यह राज्य सरकार, विभिन्न राज्यों के अधिकारी और प्रगतिशील किसान, छात्रों, शोधकर्ताओं के प्रशिक्षण का आयोजन करता है। इस संस्थान में प्रशिक्षित अधिकारी देश में मानव संसाधनों की जरूरतों को पूरा कर रहे हैं।

आकांक्षाएं

देश में कृषि क्षेत्र को मौजूदा उभरती चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जो संबंधित क्षेत्र से जुड़े किसी भी वैज्ञानिक संगठन को नई चुनौतियों के लिए समायोजित करने और उभरते हुए समस्याओं के सामधान के लिए स्वयं को विकसित करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में, संस्थान ने भविष्य की बढ़ती समस्याओं के समाधान करने की दिशा में तत्पर है। संस्थान सुपर–उपज (10 से अधिक टन/हैक्टर धान) की किस्में विकसित करने और लोकप्रिय बनाने के लिए तथा उच्च उत्पादकता, लाभप्रदता, जलवायु अनुकूलनीयता और चावल की खेती की स्थिरता के लिए काम कर रहा है। संस्थान की कुछ भविष्य की योजनाएं हैं।

- चावल की उत्पादकता बढ़ाना : यह अनुमान है कि वर्ष 2030 तक चावल की मांग 121 मिलियन टन, 2040 तक 130 मिलियन टन और 2050 तक 137 मिलियन टन होगी। इसे प्राप्त करने के लिए, प्रति इकाई क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता है। लेकिन, अन्य फसलों से प्रतिस्पर्धा के कारण, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की मांग, 2050 तक 6–7 मिलियन टन तक चावल के क्षेत्र में गिरावट हो सकती है। ऐसे परिदृश्य के तहत, 3.9 टन/हैक्टर मिल्ड चावल की उत्पादकता की लक्ष्य है।
- चावल और इसके उत्पादों के लिए मूल्यवर्धन : आय में वृद्धि और विविध खाद्य पदार्थों का जनमानस तक उपलब्धता के कारण खाद्य आदतों में तेजी से बदलाव आ रहा है। भविष्य की मांग को पूरा करने के लिए, एनआरआरआई को ब्रेड बनाने के लिए उपयुक्त चावल की किस्में विकसित करने, विशेष प्रकार के चावल जैसे डायबिटिक चावल, पानी में भिगोकर–खाने वाले चावल, प्रोटीनयुक्त चावल, खनिज समृद्ध चावल, औषधीय चावल और सुगंधित चावल और इन्हें लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है। इसके अलावा, कृषि उद्योग के उपक्रमों के माध्यम से उच्च आय के उत्पादन के लिए वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए पुआल, भूसी और चोकर का कुशलता से उपयोग किया जाना है। चावल के मूल्य श्रृंखला को अलग–अलग आयामों में मजबूत करना जैसे कि बीज श्रृंखला, अनाज श्रृंखला और प्रसंस्कृत चावल आधारित उत्पादों के लिए मूल्य श्रृंखला अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र होंगे।
- पानी, पोषक तत्व, ऊर्जा और श्रम उपयोग दक्षता को बढ़ाना : वर्तमान भारत में 1 किलो चावल के उत्पादन करने के लिए 2500–3500 लीटर पानी का उपयोग किया जाता है। जल संसाधन आधार में गिरावट और अन्य क्षेत्रों से प्रतिस्पर्धा की चुनौतियों का सामना करने के लिए, चावल की जल उत्पादकता को मौजूदा स्तर से 2000 लीटर/किलोग्राम चावल के जल स्तर को नीचे लाकर सुधार करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार, विभिन्न चावल उत्पादन प्रणालियों में, नाइट्रोजन उपयोग दक्षता को वर्तमान 35–40 प्रतिशत से 45–50 प्रतिशत तक बढ़ाया जाना चाहिए, फास्फोरस उपयोग दक्षता को वर्तमान 20–25 प्रतिशत से 30–35 प्रतिशत तक बढ़ाया जाना चाहिए। चावल की खेती को एक कुशल, प्रतिस्पर्धी और लाभदायक उत्पादन प्रणाली के रूप में बनाने के लिए, आधुनिक संसाधन संरक्षण और ऊर्जा कुशल प्रौद्योगिकियों के उपयोग द्वारा ऊर्जा उपयोग दक्षता को मौजूदा स्तरों से दोगुना करना होगा। चावल का उत्पादन अधिक लाभदायक तभी हो सकता है जब श्रम पर निर्भरता का मौजूदा स्तर एक तिहाई कम हो जाए। यह केवल चावल की खेती के श्रम गहन घटकों के मशीनीकरण के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है, विशेष रूप से छोटे खेतों के मामले में।
- जलवायु अनुकूल चावल उत्पादन तकनीकें : जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में ऐसे तकनीकों की आवश्यकता है जो (i) चावल उत्पादन विधियों में समायोजन और नए चावल उपभेदों का विकास जो उच्च तापमान का सामना कर सकते हैं, (ii) कई तनाव सहनशील किस्मों का विकास करना जो कठोर जलवायु परिस्थितियों में सामना कर सकते हैं और अच्छी उपज दे सकते हैं (iii) चावल आधारित फसल प्रणाली को अपनाना जो पर्यावरण के अनुकूल हो और जिसमें कम से कम पर्यावरणीय पदचिह्न

हो, (iv) टिकाऊ चावल उत्पादन के लिए प्राकृतिक संसाधन आधार और मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए खेती के तरीकों का विकास, (v) जलवायु परिवर्तन के लिए अनुकूलन को तेजी लाना और जोखिमों से फसलों की ग्राह्यशीलता कम करना, (vi) एक जलवायु–अनुकूल ढांचे में कृषि विकास के लिए नवीन कृषि जोखिम प्रबंधन उपायों को शामिल करना तथा उत्पादकों और अन्य हितधारकों के साथ तालमेल तथा रखरखाव। अजैविक और जैविक तनाव सहिष्णुता के लिए कई लक्षणों वाली जीनोटाइप का विकास, एक ही आनुवंशिक पृष्ठभूमि में पोषक तत्वों से भरपूर और कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स चावल वांछनीय होगा। टिकाऊ और पारिस्थितिक रूप से सुरक्षित चावल की खेती के लिए चावल के खेतों से कम मीथेन और कार्बनडाइऑक्साइड उत्सर्जन के लिए कम ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों का उपयोग आवश्यक होगी।

- चावल की फसल में उभरने वाले कीटों की समस्याओं का सामना करना : प्रमुख जोर होगा (प) विभिन्न कीट प्रतिरोधिता वाली जीनोटाइप्स की पहचान, (पप) कीट प्रबंधन के लिए पूर्वानुमान एवं समय पर कीट नियंत्रण, (पपप) जलवायु परिवर्तन के तहत चावल, कीटों, शिकारियों/परजीवियों की ट्राई–ट्रॉफीक परस्पारिकता की समझ तथा (पअ) पर्यावरण के अनुकूल कीट प्रबंधन के लिए नई अणुओं और मिश्रणों का विकास।
- लाभ के समेकन के लिए नेटवर्किंग और समन्वय : चावल विज्ञान के क्षेत्र में लाभ को समेकित करने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थान से संचार और प्रशिक्षण हेतु अंतरिक्ष और सूचना प्रौद्योगिकी, वरचुअल प्रयोगशाला और कक्षाएं आवश्यक हैं।
- देश के नए क्षेत्रों में विभिन्न चावल किस्मों को बढ़ावा देना : एनआरआरआई की चावल किस्मों को देश के नए क्षेत्रों में फैलाना होगा। विभिन्न चावल पारिस्थितिकी के लिए संस्थान की हाल ही विमोचित चावल की किस्मों को अन्य राज्यों के नए क्षेत्रों में बढ़ावा देकर प्रचार करना एक बड़ा लक्ष्य है।
- मांग–प्रेरित चावल की किस्मों के लिए प्रजननः संस्थान द्वारा विकसित मौजूदा किस्मों की आपूर्ति की जाने वाली गुणवत्ता मानदंडों तथा विभिन्न हितधारकों द्वारा मांग की गई गुणवत्ता मानकों के बीच बेमेल का मूल्यांकन आवश्यक है ताकि विभिन्न क्षेत्रों में एनआरआरआई चावल किस्मों के तेजी से विस्तार में तालमेल बैठाया जा सके।
- मानव संसाधन, संरचना और कौशल विकास : चावल में अनुसंधान एवं विकास के प्रबंध के लिए कुशल मानव शक्ति का एक पूल बनाने हेतु बुनियादी/रणनीतिक और प्रायोगिक चावल अनुसंधान, और प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए एनआरआरआई में जैव प्रौद्योगिकी, नैनो प्रौद्योगिकी, जलवायु विज्ञान, मिट्टी और अनाज की गुणवत्ता और विष विज्ञान के क्षेत्र में अत्याधुनिक अनुसंधान सुविधाओं को मजबूत किया जाएगा।

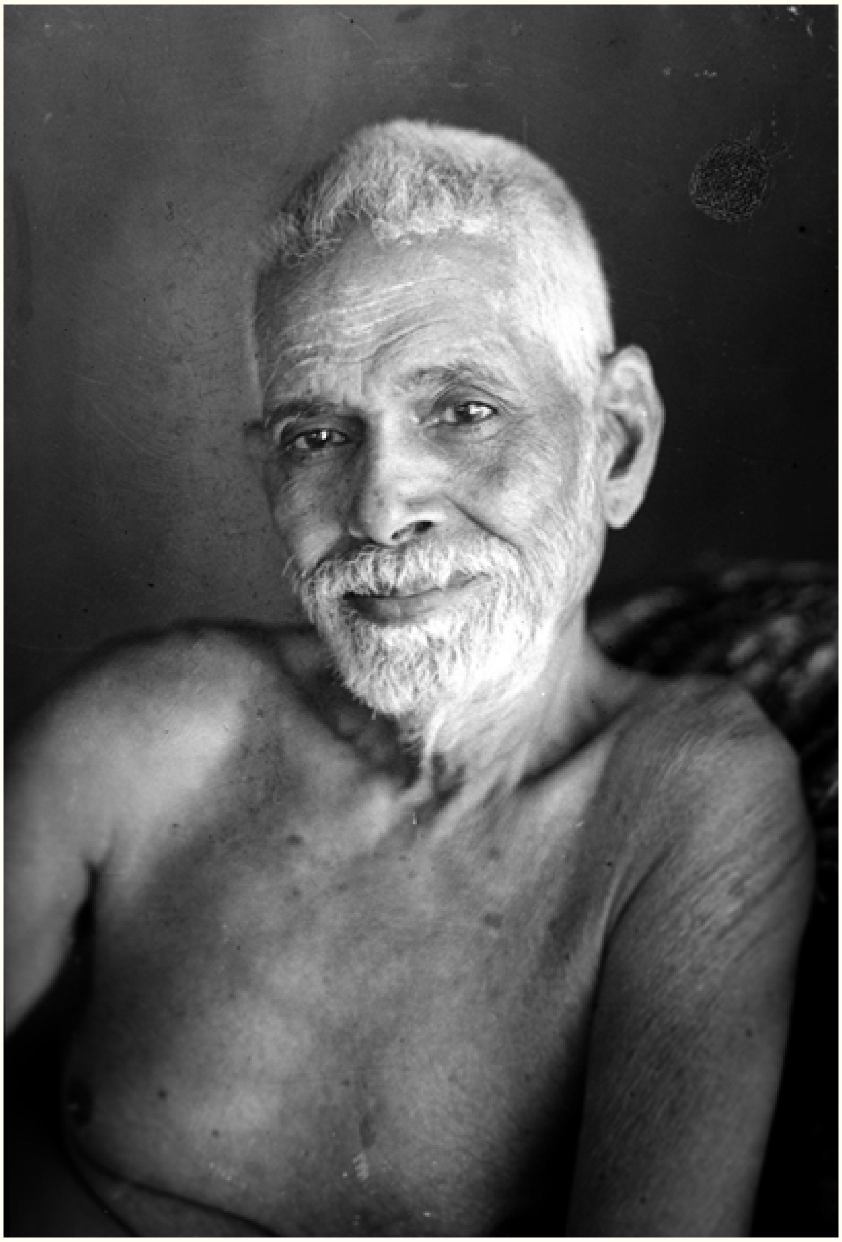

केवल शांति अस्तित्वमान है.
हमें केवल शांत रहने की जरूरत है.
शांति ही हमारी वास्तविक प्रकृति है.
हम इसे नष्ट करते हैं. इसे नष्ट करने की आदत को बंद करने की जरुरत है...

श्री रमण महर्षि

धान अनुसंधान : एक लघु चिन्तन

श्री गोपाल शर्मा

प्रोफेसर एमेरिटस, गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखंड

विश्व अर्थव्यवस्था में धान के महत्व को हम सभी जानते हैं। इसी कारण अनेकों सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थान, विश्वविद्यालयों तथा बीज कंपनियां धान पर शोध में रत हैं। मैंने स्वयं अनेकों शोधपत्रों का अध्ययन एवं आकलन करके यह निष्कर्ष निकाला कि अधिकतर शोधपत्र सिर्फ प्रकाशन के उद्देश्य से ही लिखे जाते हैं, किसी नई खोज या समस्या के समाधान के लिए नहीं। अनेकों शोधपत्रों, विशेषकर हमारे देश के विभिन्न संस्थानों में प्राप्त शोधपत्रों में उद्देश्य की स्पष्टता का प्रायः अभाव होता है। भाषा की असुविधा तो एक सामान्य सी बात है। इसका एक मुख्य कारण अनुसंधानकर्ताओं की सीमित सोच एवं संबंधित विषय में ज्ञान की कमी तो है ही साथ ही श्अज्ञातश को श्विज्ञातश करने की अक्षमता एवं रिस्क लेने की भावना का अभाव भी है। अनेकों शोधपत्रों में शोध के परिणाम की कल्पना पहले से ही की जा सकती है। शोधकर्ता भी अपेक्षित परिणाम प्रस्तुत कर देता है। वास्तविक समस्याओं को सीधे–सीधे हल करने की प्रवृत्ति कम ही दिखाई पड़ती है जबकि होना यह चाहिए कि सर्वप्रथम समस्याओं को ठीक से चिन्हित किया जाए। इसमें तीन बातों का ध्यान रखना जरूरी है। प्रथम, इस शोध में उन समस्याओं का निदान में सहायता मिलेगी जिनके विषय में अभी अधूरी जानकारी है। दूसरे किसी बिल्कुल ही नई जानकारी की उपलब्धता होगी, जिसके बारे में कुछ पता ही नहीं था। तीसरे, एक नया उत्पाद का प्रोसेस या क्रियाविधि एवं तकनीकी की उपलब्धता होगी। इन बातों को ध्यान में रखकर यदि शोध विषय का चुनाव किया जाए तो शोध की गुणवत्ता निश्चय ही बढ़ेगी।

उत्तराखंड में पहले उष्णा चावल को कोई जानता भी नहीं था। बाजार में उष्णा चावल ही दिखाई पड़ता है। मिल्ड राइस अर्थात अरवा बहुत कम मिलता है जिसे धान को सीधे चक्की में कुटाने पर प्राप्त किया जाता है। उष्णा चावल के अनेकों लाभ हैं, परंतु अरवा पसंद करने वालों को इसका स्वाद रुचिकर नहीं लगता है। रबर शैलर का आविष्कार हो चुका है फिर भी उष्णा चावल भारी मात्रा में तैयार किया जाता है जसमें हजारों टन इंधन एवं पानी की खपत होती है। साथी ही यह एक श्रम–साध्य प्रोसेस है।

कुछ वर्षों पूर्व पूसा 1121 एवं पूसा 1509 जैस धान की प्रजातियां विकसित की गई जिनके प्रचार–प्रसार के लिए बासमती चावल की परिभाषा को ही बदल दिया गया क्योंकि इनके दानों की गुणवत्ता की वजह से इनकी बहुत मांग थी। परंतु जो स्वाद एवं सुगंध पूसा बासमती 1 तथा अनेकों अन्य बासमती चावलों में है वह अतुलनीय है। क्या हम इन पुरानी प्रजातियों की समस्याओं जैसे लॉजिंग, कम उपज व रोग–कीटों से प्रभावित होने जैसी कमियों को दूर नहीं कर सकते ?

हमारे स्थानीय सुगंधित चावल प्रायः लुप्त होते जा रहे हैं। मैं देख रहा हूं कि उत्तराखंड में एक समय में अत्यंत लोकप्रिय सुगंधित चावल जैसे तिलकचंदन, हंसराज एवं धनिया आदि अब मिलने मुश्किल हो गए हैं। इनको उन्नत करने पर अनुसंधान तो नगण्य ही है। बिहार का सुगंधा एवं एनआरआरआई द्वारा विकसित चीनीकामिनी अत्यंत ही सुगंधित एवं स्वादिष्ट चावल है, परंतु इनके प्रसार की बहुत आवश्यकता है। ऐसे अनेकों सुगंधित चावल अन्य प्रदेशों में भी हैं परंतु उनके प्रसार व उन्हें उन्नत किए जाने पर बहुत उत्साह से कार्य नहीं हो रहा है। अक्सर इन्हें ऑर्गेनिक चावल के रूप में बाजार में बेचा जा रहा है, परंतु क्या वो ऑर्गेनिक उत्पादों के मानदंडों पर वास्तव में खरी उतरेंगे, इसमें संदेह है।

मणिपुर राज्य का काला चावल ;मणिपुरी ब्लैक राइसद्ध बहुत गुणकारी माना जाता है और काफी ऊंचे दाम पर बिकता है। सन् 2017 में अपने इम्फाल भ्रमण के दौरान मुझे ज्ञात हुआ कि इसकी कोई भी वैज्ञानिक रूप से विकसित प्रजाति नहीं है। स्थानीय चावल में प्रायः अनेकों भूमिजातियों का मिश्रण होता है जो कि मणिपुरी काले चावल के रूप में बेचा जा रहा है। दूसरा, इस पर शोध करने की जरूरत है कि क्या यह वास्तव में इतना गुणकारी है जितना सामान्य मनुष्य के मानस में यह विचार बैठा हुआ है। इसके एंथोसायनिन, प्रोटीन आदि पर कुछ कार्य अवश्य हुआ है, पंरतु वह पर्याप्त नहीं है। इसे 'शाही' चावल तथा 'निषेचित' चावल कहने के पीछे क्या तथ्य हैं, उनको जानना जरूरी है।

पूर्वोतर में (असम राज्य में) पाए जाने वाले 'सोक एंड ईट' (चावलों बिना पकाए, सिर्फ भिगोने पर मृदु हो जाने वाले चावल) को समुचित स्थानों पर उगाने एवं उनके प्रसार की महत्ती आवश्यकता है। इससे ईंधन की खपत तथा धुंए से होने वाली सांस संबंधी बीमारियों तथा वायु प्रदूषण में कमी होगी।

एनआरआरआई, कटक में पाया गया कि ऑर्गेनिक कृषि को यदि चार पांच साल तक एक ही खेत में किया जाए तो उससे आधुनिक कृषि पद्धति के बराबर उपज प्राप्त की जा सकती है। डबल्ड हैप्लाएड विधि भी अत्यंत उपयोगी पाई गई, परंतु देश में इन तकनीकों का प्रसार नगण्य ही है।

आधुनिक रूप से विकसित चावल की प्रजातियों को पोषक तत्वों जैसे प्रोटीन, आयरन, जिंक आदि से युक्त करने पर कार्य हो रहा है, जिसमें काफी समय लगता है साथ ही ये गुण कब तक टिक पाएंगे, यह कहना भी मुश्किल है। क्या हम इस बात पर विचार कर सकते हैं कि आधुनिक, उच्च उपज वाली प्रजातियों के चावल को स्थानीय, पोषक तत्वों से युक्त चावल के साथ मिश्रित करके जन सामान्य को उपलब्ध कराया जाए साथ ही इन स्थानीय चावलों की कम उपज आदि समस्याओं पर भी शोध की जाए।

(उपरोक्त विचार मेरे अपने हैं। संभव है इनमें कुछ त्रुटियां व व्यावहारिकता का अभाव हो। सेवानिवृत्त होने पर भी चावल अनुसंधान तथा संस्थान से जुड़े रहने की भावना ने ही यह लेख लिखने को प्रेरित किया है। कृपया अपने ज्ञान के आलोक में ही इसे पढ़ने का कष्ट करें।)

पूर्वी भारत के लिए चावल–मक्का फसल प्रणाली आधारित संरक्षण कृषि

राहुल त्रिपाठी, ए.के. नायक, बी, लाल, मोहम्मद शाहिद, प्रियंका गौतम, सुष्मिता मुंडा, एस महांती, पी के गुरु, रुबीना खानम, बी बी पंडा, बी एस शतपथी, डी चटर्जी, उपेंद्र कुमार, एस डी महापात्र, पी के नायक

परिचय

वर्तमान परिस्थिति में प्राकृतिक संसाधन घटते जा रहे हैं जिसके फलस्वरूप, कृषि प्रणालियों को बनाए रखते हुए निरंतर बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा को कायम रखना, जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों का सामना करना और खेती कार्य की बढ़ती लागत प्रमुख चुनौतियां बन गई हैं। प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास मुख्य रूप से सघन जुताई, एकल फसल तथा फसल अवशेषों से पर्याप्त जैविक पदार्थों का न मिल पाना है। इन चुनौतियों को दूर करने की क्षमता संरक्षण कृषि प्रणाली में निहित है। संरक्षण कृषि वह खेती प्रणाली है जिसमें मिट्टी को न्यूनतम बाधा (अर्थात बिना जुताई), होती है, फसल अवशेषों की प्रतिधारण और फसल विविधीकरण को बढ़ावा मिलता है। संरक्षण कृषि पद्धतियां भूमि में पोषक तत्व और जल उपयोग दक्षता को बढ़ाती हैं, भूमि की सतह के ऊपर और नीचे जैव विविधता तथा प्राकृतिक जैविक प्रक्रियाओं को बढ़ाती हैं। संरक्षण कृषि से तीन प्रकार के लाभ हैः आर्थिक लाभ, कृषि लाभ और पर्यावरण लाभ। आर्थिक लाभ से उत्पादन क्षमता में सुधार होता है। संरक्षण कृषि से आर्थिक लाभ तीन प्रकार से हो सकता हैं पण श्रम आवश्यकता में कमी और समय की बचत पपण लागत में कमी, उदाहरण के लिए ईंधन, मशीनरी संचालन लागत और उनका रखरखाव, साथ ही कम श्रम लागत पपपण निवेशों का उच्च उपयोग अर्थात कम निवेश से अधिक लाभ। इस पद्धति से मिट्टी में जैविक पदार्थों की वृद्धि होती है, मिट्टी नमी संरक्षण को बढ़ावा मिलता है, मिट्टी की संरचना में सुधार द्वारा मिट्टी की उत्पादकता में सुधार होता है। आरंभ में फसल अवशेषों को मिलाने से मिट्टी की ऊपरी परतों में जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है, लेकिन कुछ फसल चक्रों के बाद जैविक पदार्थ गहरी परतों तक फैल जाते हैं। उर्वरक उपयोग दक्षता, जल धारण क्षमता, मृदा एकत्रीकरण, मृदा पर्यावरण और पोषक तत्व प्रतिधारण आदि में मृदा जैविक पदार्थ महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संरक्षण कृषि के द्वारा मिट्टी क्षरण को कम करने जैसा पर्यावरणीय लाभ मिलता है, जैव विविधता में वृद्धि होती है और कार्बन पृथ्थकरण होता है जिससे संरक्षण कृषि अधिक स्थाई बन जाता है। मृदा की सतह पर अवस्थित फसल अवशेष वर्षा के प्रभाव को कम करके मिट्टी के क्षरण को कम करते हैं और मिट्टी में उच्च रिसन और पानी का बहना कम होता है। मिट्टी की सतह पर फसल अवशेषों द्वारा भौतिक अवरोध बनता है जिससे मिट्टी की सतह से वाष्पीकरण भी कम होता है।

संरक्षण कृषि के घटक

न्यूनतम जुताई / शून्य जुताई

सीधी बुवाई पद्धति के अंतर्गत मिट्टी की बिना या न्यूनतम यांत्रिक जुताई से फसलों की खेती की जाती है। संरक्षण कृषि प्रणालियों में शून्य जुताई / बिना जुताई / न्यूनतम जुताई को अपनाकर फसल के अवशेषों को बनाए रखते हुए मिट्टी में सीधे ही बीजों की बुवाई की जाती है। सीधी बुवाई आमतौर पर शून्य जुताई बीज ड्रिल का उपयोग करके की जाती है जो मिट्टी में बीज रखने के लिए एक छिद्र खोलती है। बीज छिद्र के आकार को सबसे न्यूनतम रखा जाता है। आदर्श रूप से बीज छिद्र बुआई करने के बाद गीली घास–पात से पूरी तरह से ढक जाता है और सतह पर कोई ढीली मिट्टी दिखाई नहीं देती है। बिना जुताई के तहत बीज बोने के लिए भूमि तैयार करने के लिए फसल अवशेषों को बनाए रखना, खरपतवार नियंत्रण के लिए शाकनाशी का छिड़काव करना और फसल अवशेषों के माध्यम से सीधे बीजारोपण करना शामिल है।

अवशेषों का प्रतिधारण

मिट्टी को ढँक कर रखना कृषि संरक्षण का एक मूल सिद्धांत है। फसल के अवशेषों को मिट्टी की सतह पर छोड़ दिया जाता है। फसल अवशेष पोषक तत्वों को जुटाते और पुनः चक्रित करते हैं, मिट्टी की संरचना में सुधार करते हैं और मिट्टी क्षरण से बचाते हैं तथा मिट्टी की कठोरता को कम करते हैं। मिट्टी में वर्षा जल के प्रवेश मिट्टी के आवरण की मात्रा पर निर्भर करता है।

फसल विविधीकरण

फसल विविधीकरण पोषक तत्वों के चक्रण में मदद करता है।

पोषक तत्व जो मिट्टी की गहरी परतों में चल जाते हैं और जो एकल फसल के लिए उपलब्ध नहीं होते हैं, कभी–कभी फसल चक्रण द्वारा उन्हें पुनर्नवीनीकरण किया जा सकता है। फसलों का चक्रण जैविक पंप के रूप में कार्य करता हैं। फसल विविधीकरण में इन फसलों की जड़ों से विभिन्न जैविक पदार्थों के उत्सर्जन से विभिन्न प्रकार के जीवाणु और कवक आकर्षित होते हैं और मिट्टी में इनकी विविधता बनी रहती है। ये सूक्ष्म जीवाणु और कवक भूमि पर उपस्थित पौध अवशेषों को निर्धारित करके पौधों को उपलब्ध होने वाली पोषक तत्वों में बदलने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। फसल चक्र से फसल अवशेषों के द्वारा एक फसल से फसल विशिष्ट कीटों और रोगों को दूसरी फसल में ले जाने से रोकता है।

चावल–मक्का फसल प्रणाली के लिए संरक्षण कृषि

पूर्वी भारत में विशेष रूप से ओडिशा में मुख्य रूप से खरीफ ऋतु के दौरान चावल की खेती विविध मिट्टियों एवं पारिस्थितिकी में की जाती है। ओडिशा में रबी तथा मानसून (खरीफ मौसम) धान फसल के बाद लगभग 2 मिलियन हेक्टेयर भूमि कई बाधाओं के कारण परती पड़ी रहती है जिसमें संभावित फसल उत्पादन हो सकता है। पूर्वी भारत में रबी मौसम के दौरान मृदा में अवशेष नमी का उपयोग करते हुए दलहनी फसलें की खेती की जाती है। इन क्षेत्रों में शस्य गहनता की स्थिरता के साथ–साथ भूमि की उर्वरता बनाए रखना चूनौतीपूर्ण है। इन परती भूमि को खेती में लाना या इन क्षेत्रों में मक्का के साथ विविधता लाने से खाद्य उत्पादन में काफी सुधार हो सकता है जिससे कृषकों की आजीविका में वृद्धि हो सकती है। विभिन्न कृषि–जलवायु परिस्थितियों में मक्का एक लाभप्रद फसल के रूप में खेती की जाती है जो धान के बाद की परती भूमि के विविधीकरण के लिए उपयुक्त विकल्प है। किसानों के लिए मक्का आय का अच्छा स्रोत बनकर उभरा है। पूर्वी भारत एवं विशेष रूप से दक्षिण ओडिशा के जिलों में मक्का काफी लोकप्रिय है जिसका राज्य के कुल मक्का उत्पादन में लगभग तीन–चौथाई योगदान है। पारंपरिक मक्का बोने का काम आम तौर पर खरीफ के चावल के बाद लगभग 25–30 दिनों तक बारंबार जुताई से खेत की उचित तैयारी द्वारा किया जाता है। इससे देरी से बुवाई होती है और एंथेसिस एवं दाना भरण के चरण में फसल को गर्म मौसम भी सहन करनी पड़ती है। इसलिए, इन क्षेत्रों में चावल–मक्का आधारित संरक्षण कृषि पद्धति आर्थिक रूप से लाभप्रद एवं पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ हो सकती है।

भाकृअनुप–एनआरआरआई द्वारा विकसित सिंचित पारिस्थितिकी के लिए चावल–मक्का फसल प्रणाली के लिए संरक्षण कृषि प्रौद्योगिकी का विवरण

भाकृअनुप–एनआरआरआई, कटक द्वारा चावल–मक्का फसल प्रणाली के लिए एक संरक्षण कृषि प्रौद्योगिकी विकसित की गई है जो कृषकों के बीच काफी प्रचलित है।

चावल–मक्का की फसल प्रणाली के तहत चावल की खेती के लिए खेती पद्धतियों का पैकेज निम्नलिखित है।

खेत की तैयारीरू चावल की फसल की बुवाई करने के 15 दिन से 20 दिन, 1.20 किलोग्राम ग्लाइफोसेट प्रति हेक्टेयर की दर पर बुवाई पूर्व प्रबंधन आमतौर किया जाता है। खरपतवारों की अधिकता के मामले में बासी क्यारी तकनीक का पालन किया जाता है।

बीज उपचारः धान के बीजों को बाविस्टिन 2 ग्राम/किलोग्राम बीज एवं इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यूएस 5 ग्राम/किलोग्राम बीज दर पर उपचारित किया जाता है।

i. धान की शुष्क सीधी बुआईः खरीफ मौसम में धान की शुष्क सीधी बुआई जीरो बीज–सह–उर्वरक ड्रील द्वारा किया जाता है। बीज दर 40 किलोग्राम प्रति हैक्टर था एवं बीज ड्रील में बीज स्थान ट्यूब को समायोजित करके कतार से कतार 20 से.मी. की दूरी पर बीज की बुआई की जाती है।

ii. उर्वरक प्रयोगः रासायनिक उर्वरक नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश का उपयोग 80:40:40 के अनुपात में प्रयोग में किया जाता है। फास्फोरस एवं पोटाश की संपूर्ण मात्रा तथा नत्रजन की 25 प्रतिशत आधारी प्रयोग तथा

अधिकतम दौजी निकलने की अवस्था में 50 प्रतिशत नत्रजन एवं बाली निकलने की अवस्था में 25 प्रतिशत नत्रजन का प्रयोग करें।

iii. जल प्रबंधनः बुआई एवं सिंचाई आवश्यकताओं के लिए जल की पर्याप्त आपूर्ति हेतु सिंचाई की अच्छी व्यवस्था करनी चाहिए। फसल की वृद्धि अवस्था विशेषकर दौजी, बाली निकलने एवं दाना भरण के समय खेत में 3–5 से. मी. का जल स्तर बनाए रखना चाहिए एवं आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

iv. खरपतवार प्रबंधनः खरपतवार प्रबंधन संरक्षण कृषि का

बहुत आवश्यक भाग है। चावल की बुवाई के बाद खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए, पेन्डीमिथालिन 1000 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से और खरपतवारों के आविर्भाव पूर्व फेनोक्साप्रोप–पी–इथाइल 60 ग्राम प्रति हेक्टेयर एवं खरपतवार निकलने के पश्चात साइहालोफॉप ब्यूटाइल 100 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जाता है।

v. कीट एवं रोग प्रबंधनः आवश्यकतानुसार कीटनाशकों का प्रयोग करके खेत को कीटों एवं रोग से मुक्त रखा जा सकता है।

vi. धान की कटाईः फसलों की कटाई केवल तभी की जानी चाहिए जब पौधें शारीरिक परिपक्वता प्राप्त कर लें और बीज की नमी लगभग 25 प्रतिशत हो। जमीन से 30 सेमी उपर धान के अवशेष (पुआल) को छोड़ते हुए कटाई की जाती है।

चावल–मक्का की फसल प्रणाली के तहत मक्का की खेती के लिए खेती पद्धतियों का पैकेज का नीचे उल्लेख किया गया है।

i. मक्के की बुआई के पहले शाकनाशी प्रयोगरू धान की कटाई के बाद खेत में यदि खरपतवार उपस्थित होते हैं तो मक्का की बुआई के 15 दिन पहले खरपतवारों को नष्ट करने के लिए ग्लाइफोसेट 1.23 किग्रा/हैक्टर दर पर छिड़काव किया जाता है।

ii. मक्के की बुआईः एक आदर्श नमी स्तर पर चावल के अवशेषों के साथ मल्टीक्रॉप प्लानटर/शून्य जुताई बीज ड्रिल द्वारा मक्का बोया जाता है। मक्के के 30 किलोग्राम/हेक्टेयर बीज दर से पंक्ति में बोया जाता है। यदि पर्याप्त नमी उपलब्ध नहीं है, तो बुआई पूर्व सिंचाई की आवश्यकता होती है।

iii. शाकनाशी प्रयोगः खरपतवारों के नियंत्रण के लिए बुआई करने 4 से 5 दिनों के बाद अट्राजाइन 0.5 किलोग्राम/हेक्टेयर दर से छिड़काव करना चाहिए।

iv. पोषक तत्व प्रबंधनः नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश का 120:50:50 के अनुपात में प्रयोग की संस्तुति की जाती है तथा बुआई करने के 40–45 दिनों बाद जब पौधें घुटने की ऊंचाई तक हो जाए तथा फसल में गुच्छे बनने की अवस्था में नत्रजन उर्वरक को तीन भागों में प्रयोग करना चाहिए। फास्फोरस और पोटाश उर्वरकों की संपूर्ण मात्रा आधारी खुराक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

v. कटाई : मक्का को हाथों से तोड़ा जाता है और खेत में मक्का के अवशेष नहीं रहते हैं।

प्रौद्योगिकी की मान्यता

किसानों द्वारा संरक्षण कृषि प्रौद्योगिकी का परीक्षण किया गया और संरक्षण कृषि पद्धति को मान्य पाया गया। भारत के ओडिशा के जाजपुर जिले के बंदरेश्वर के एक किसान के खेत में इस प्रौद्योगिकी का परीक्षण किया गया और मान्य पाया गया। इस क्षेत्र की जलवायु गर्म और आर्द्र के साथ औसत वार्षिक अधिकतम और न्यूनतम तापमान क्रमशः 32.9 और 22.3 डिग्री सेल्सियस है। यहां वार्षिक वर्षा लगभग 1600 मिमी होती है। मिट्टी रेतीली एवं दोमट बनावट (31 प्रतिशत मिट्टी, 19 प्रतिशत गाद और 50 प्रतिशत रेत) की है। अन्य भौतिक और रासायनिक गुण इस प्रकार थेः थोक घनत्व 1.45 मिलीग्राम मैग्नीशियम प्रति वर्गमीटर, पीएच 5.7, ईसी 0.29 डीएस/वर्गमीटर (1: 2.5, मिट्टीः पानी निलंबन उपयोग करते हुए), मिट्टी जैविक कार्बन 0.84 प्रतिशत, उपलब्ध नाइट्रोजन 401 किलोग्राम/है., उपलब्ध पोटेशियम 400 किलोग्राम/है. और उपलब्ध पोटाश 45 किलोग्राम/हैक्टर है। चावल–मक्का संरक्षण कृषि तकनीक की तुलना किसानों के द्वारा की जा रही खेती पद्धतियों से की गई थी जिसमें खरीफ में चावल की कटाई के बाद पारंपरिक प्रतिरोपित चावल, जुताई और मूंग की छिटकावा पारंपरिक विधि की खेती पद्धति शामिल थे।

चित्र.1 धान की बुआई से पहले दाएं भूखंड में ग्लाइफोसेट का प्रयोग किया गया है।

चित्र.2. न्यनूतम मिट्टी खुदाई सहित मल्टीक्रॉप प्लांटर से धान की बुआई

चित्र.3. सहित मल्टीक्रॉप प्लांटर से मक्के की बुआई

चित्र.4. घुटने की ऊंचाई तक मक्का फसल

चित्र.5. किसानों के खेत में चावल–मक्का फसल प्रणाली में संरक्षण कृषि प्रथाओं का प्रदर्शन

संरक्षण कृषि प्रणाली से उत्पादकता, अर्थशास्त्र और ऊर्जा

संरक्षण कृषि प्रणाली उत्पादकता, अर्थशास्त्र और ऊर्जा का मूल्यांकन तीन वर्षों के प्रयोग पर किया गया। चावल–मूंग की उपज (किसान की प्रथा) की तुलना में चावल–मक्का प्रणाली (संरक्षण कृषि) में चावल की उपज प्रथम एव तीसरे वर्ष क्रमशः 10.2 और 3.7% अधिक थी। तीन साल के मान्यता परीक्षण से पता चला कि चावल–मक्का प्रणाली (संरक्षण कृषि आधारित फसल चक्र) की उत्पादकता चावल–मूंग (फसल चक्र) की तुलना में 51–64% अधिक पाई गई है। चावल–मक्का संरक्षण कृषि आधारित फसल प्रणाली का लाभ–लागत अनुपात तीन साल में चावल–मूंग की तुलना में लगातार (23 से 42.9%) अधिक पाई गई (तालिका 1)।

तालिका 1. पारंपरिक प्रणाली की तुलना में संरक्षण कृषि की प्रणाली उत्पादकता और ऊर्जा दक्षता

	संरक्षण कृषि					किसान प्रथा				
वर्ष	अनाज उपज (टन/है.)		चावल समान उपज (टन/है)	प्रणाली उत्पादकता	लाभ–लागत अनुपात	अनाज उपज (टन/है)		चावल समान उपज (टन/है)	प्रणाली उत्पादकता	लाभ–लागत अनुपात
	चावल	मक्का	मक्का	चावल-मक्का	चावल-मक्का	चावल	मूंग	मूंग	चावल-मूंग	चावल-मूंग
2015-16	5.4	6.6	6.1	11.5	1.63	4.9	0.6	2.1	7.0	1.14
2016-17	5.2	6.1	5.7	10.9	1.49	5.4	0.5	1.8	7.2	1.21
2017-18	5.6	6.6	6.1	11.7	1.66	5.4	0.6	2.1	7.5	1.29

चावल–मूंग (किसान प्रथा) की तुलना में चावल–मक्का प्रणाली (संरक्षण कृषि) में शुद्ध ऊर्जा लाभ और ऊर्जा दक्षता अधिक थी (चित्र. 6)। चावल–मूंग (किसान प्रथा) की तुलना में चावल–मक्का प्रणाली (संरक्षण कृषि) में ऊर्जा दक्षता 58.5 प्रतिशत अधिक थी (चित्र. 7)।

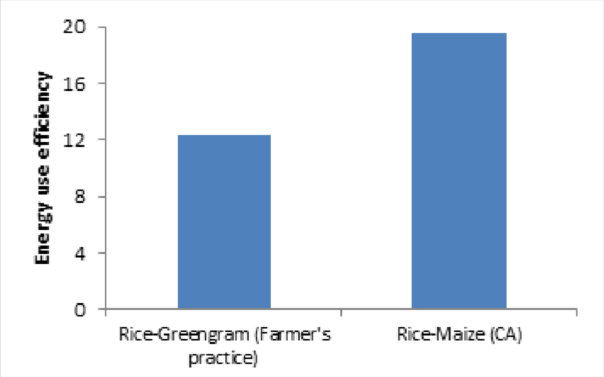

चित्र. 6. किसान प्रथा की तुलना में चावल–मक्का प्रणाली (संरक्षण कृषि) ऊर्जा दक्षता

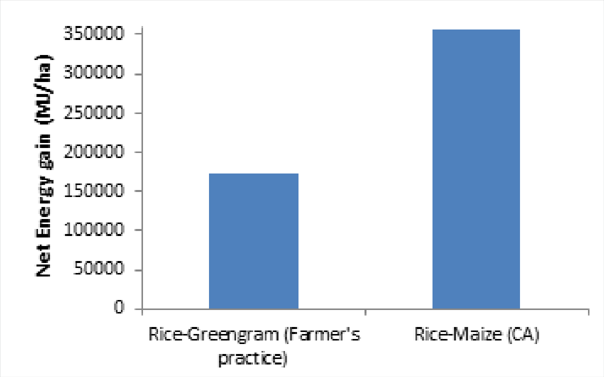

चित्र. 7. किसान प्रथा की तुलना में चावल–मक्का प्रणाली में शुद्ध ऊर्जा लाभ

अन्य लाभ

- इस प्रौद्योगिकी से ऊर्जा दक्षता बढ़ती है, कार्बन पदचिन्ह घटती है एवं खेती लागत कम होती है।
- मिट्टी में कार्बन की मात्रा में वृद्धि होती है।
- संरक्षण कृषि प्रणाली से फसल मौसम के चरम समय में श्रम की कमी का अच्छा प्रबंधन होता है।
- अपशिष्ट नमी की संरक्षण होती है जिससे मक्के में बारंबार सिंचाई कम करती पड़ती है।

- अपशिष्ट प्रतिधारण एवं मिट्टी के ठोसपन के कारण मिट्टी का क्षरण कम होता है तथा पानी का अतिरिक्त बहाव नहीं होता है।
- अपशिष्ट प्रतिधारण से खरपतवार वृद्धि नियंत्रण रहती है।

प्रौद्योगिकी के लक्ष्य क्षेत्र

यह तकनीक पूर्वी तटीय मैदानों और पहाड़ियों (कृषि–जलवायु क्षेत्र योजना आयोग) के लिए उपयुक्त है। उप क्षेत्रों के तहत, पूर्व और दक्षिण–पूर्वी तटीय मैदान और पूर्व और उत्तर पूर्व इस तकनीक के लिए उपयुक्त क्षेत्र हैं। प्रौद्योगिकी ओडिशा के कटक और जाजपुर जिलों में मान्य पाई गई है।

प्रौद्योगिकी का विस्तार

पारंपरिक कृषि आधारित फसल प्रबंधन प्रणालियां धीरे–धीरे कम जुताई/शून्य–जुताई कार्यों की ओर जा रही हैं। संरक्षण कृषि आधारित प्रौद्योगिकी को बड़े पैमाने पर लोकप्रिय बनाने, उत्पादकता बढ़ाने तथा इसके उत्तरोत्तर और विकास करने के लिए पूर्ण पैकेज और प्रथाओं का प्रसार करने की आवश्यकता है। संरक्षण कृषि अपनाने से फसल गहनता के माध्यम से बहुत अधिक विविधीकरण के लिए मार्ग भी मिलते हैं। पूर्वी भारत में फसल की उपयुक्त किस्मों के साथ–साथ पूर्ण खेती पद्धति के पैकेज और उपयुक्त जुताई सहित पूर्वी भारत के चावल–परती क्षेत्रों में फसल प्रणाली के विविधीकरण स्थायी गहनता के लिए महत्वपूर्ण रणनीतियों में से एक है। संरक्षण कृषि आधारित प्रबंधन प्रथाओं का भी उपयोग करके खेत की तैयारी के बिना फसलों की बुआई समय में बदलाव करके खरीफ मौसम की फसल की देर से कटाई की समस्या का समाधान किया जा सकता है। राज्य में स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के संयुक्त प्रयासों के माध्यम से खेती पद्धतियों का पैकेज और प्रथाओं को लोकप्रिय बनाकर संरक्षण कृषि प्रौद्योगिकी के विकास और प्रसार के प्रयास किए जाने चाहिए। इस संरक्षण कृषि को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न सरकारी योजनाओं जैसे कि राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, कृषि विस्तार और प्रौद्योगिकी पर राष्ट्रीय मिशन (कृषि यांत्रिकीकरण पर उप–मिशन) इत्यादि को नीतिगत उपकरणों और संस्थागत व्यवस्था के साथ एकीकृत करने की आवश्यकता है जिससे इस प्रौद्योगिकी की विकास और प्रसार में सुविधा होगी। इसके अलावा, मक्के की चिवड़ा और तेल उत्पादन के लिए मक्का आधारित कृषि–उद्योगों को प्रोत्साहन द्वारा बढ़ावा दिया जा सकता है।

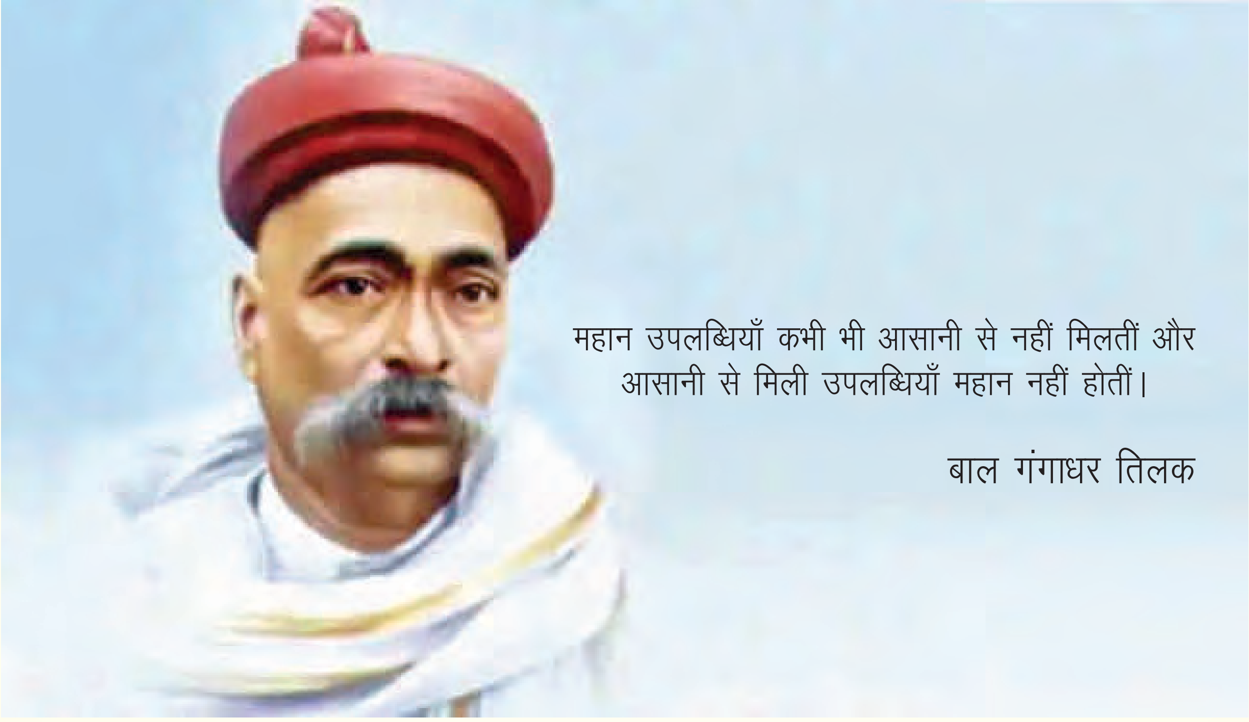

विभिन्न पारितंत्रों के लिए संस्थान द्वारा विकसित कुछ लोकप्रिय चावल की किस्में

एस के दाश, एस के प्रधान, एम के कर, एस एस सी पटनायक, एल बेहेरा, जे मेहेर, ए आनंदन,
बी सी मरांडी, एस लेंका, के चट्टोपाध्याय, ओ एन सिंह, टी महापात्र

भारत के विभिन्न पारिस्थितिकी प्रणालियों में खेती के लिए 1200 से अधिक उपयुक्त किस्में विमोचित की गई हैं और उनमें से 139 किस्में एनआरआरआई, कटक द्वारा विकसित की गई हैं।

ऊपरीभूमि पारितंत्र

वंदना (आरआर 167–982): यह अति शीघ्र पकने (90–95 दिन) वाली धान प्रजाति है जिसे सर्वप्रथम वर्ष 1992 में झारखंड के छोटानागपुर पठार के लिए विमोचित किया गया। ओडिशा के ऊपरिभूमियों में खेती के लिए इस प्रजाति को वर्ष 2002 में विमोचित तथा अधिसूचित किया गया। इसकी ऊंचाई कम (95–110 सेंटीमीटर) है। यह प्रजाति सूखा एवं मृदा अम्लीयता के प्रति सहिष्णु है। इसका दाना लंबा एवं मोटा है। वंदना मध्यम रूप से प्रध्वंस एवं भूरा धब्बा रोग प्रतिरोधी है। इसकी औसत उत्पादकता 3.5 टन प्रति हेक्टेयर है।

कामेश (सीआर धान 40): यह शीघ्र पकने (110 दिन) वाली, अर्ध बौनी (100–105 सेंटीमीटर) धान की प्रजाति है, मेंड वाली ऊपरीभूमियों तथा वर्षाश्रित ऊपरीभूमियों के लिए यह एक लोकप्रिय किस्म है। इसे वर्ष 2008 में झारखंड एवं महाराष्ट्र के सूखा आक्रांत क्षेत्रों में खेती के लिए विमोचित तथा अधिसूचित किया गया। इसका दाना छोटा एवं मोटा है तथा औसत उत्पादकता 3.0–3.5 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति भूरा धब्बा, गालमिज प्रध्वंस, सफेदपीठवाला पौध माहू, तना छेदक तथा पत्ता मोड़क के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। वर्षाश्रित ऊपरीभूमियों में सीधी बुआई परिस्थिति के लिए यह उपयुक्त है।

सहभागी धान (आईआर 74371–70–1–1–सीआरआर–1): यह शीघ्र पकने (100 दिन) वाली, बौना (85–90 सेंटीमीटर) धान की प्रजाति है। वर्ष 2008 तथा 2011 में क्रमशः झारखंड एवं ओडिशा में खेती के लिए विमोचित तथा अधिसूचित किया गया। यह सूखा सहिष्णु है तथा अनुकूल परिस्थिति में भी अच्छी उपज देती है। ऊपरीभूमि, वर्षाश्रित सीधी बुआई तथा रोपित परिस्थितियों के लिए उपयुक्त किस्म है। इसका दाना लंबा एवं मोटा है तथा इसका ऊपरी छिलका स्वर्णिम रंग का है। इसकी औसत उत्पादकता 3.8–4.5 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति पत्ता प्रध्वंस प्रतिरोधी है तथा भूरा धब्बा, आच्छद विगलन, तना छेदक एवं पत्ता मोड़क के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

सत्यभामा (सीआर धान 100): यह शीघ्र पकने (105–110 दिन) वाली, अर्ध–बौना (95–105 सेंटीमीटर) धान की प्रजाति है। इसे ओडिशा के सूखा प्रवण क्षेत्रों में खेती के लिए वर्ष 2012 में विमोचित किया गया। इसका दाना मध्यम लंबा एवं पतला है। यह प्रजाति भूसी बदरंगता के प्रति सहिष्णु है। सूखा परिस्थिति में इसकी औसत उत्पादकता 2.8 टन प्रति हेक्टेयर है तथा अनुकूल परिस्थितियों में इससे 4.7 टन प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है। पत्ता मोड़क, व्होर्ल मैगट, सफेदपीठवाला पौध माहू, भूरा पौध माहू, गालमिज, हिस्पा, थ्रिप्स, पत्ता प्रध्वंस तथा धान टुंगो वायरस के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

ऐरोबिक धान:

प्यारी (सीआर धान 200): यह मध्यम अवधि की शीघ्र पकने (115–120 दिन) वाली अर्द्ध–बौना धान प्रजाति है तथा सीमित एवं ऐराबिक परिस्थितियों के लिए उपयुक्त है। ओडिशा में खेती के लिए इसे वर्ष 2011 में विमोचित किया गया है। इसका दाना छोटा एवं मोटा है तथा औसत उत्पादकता 4.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह पत्ता प्रध्वंस, गला प्रध्वंस, भूरा धब्बा, पीला तना छेदक तथा पत्ता मोड़क के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

सीआर धान 201 (सीआर 2721–81–3–आईआर 83380–बी–बी–124–1): यह मध्यम अवधि की शीघ्र पकने (110–115 दिन) वाली, अर्ध–बौना, न गिरने वाली धान प्रजाति है, सीमित तथा ऐराबिक परिस्थितियों के लिए उपयुक्त है। बिहार तथा छत्तीसगढ़ में खेती के लिए इसे क्रमशः वर्ष 2012 में विमोचित तथा 2014 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना लंबा एवं पतला है तथा औसत उत्पादकता 3.8 टन प्रति हेक्टेयर है। इस किस्म के प्रत्येक वर्गमीटर में बालियों की संख्या (280) अधिक होती हैं तथा बालियां लंबी एवं घनी होती हैं। यह प्रजाति पत्ता प्रध्वंस, आच्छद विगलन, तना छेदक (डेड हार्ट एवं व्हाइट इयर हेड), पत्ता मोड़क, व्होर्ल मैगट एवं राइस थ्रीप्स के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

सीआर धान 202 (सीआर 2715–13–आईआर 84899–बी–154): यह मध्यम अवधि की शीघ्र पकने (110 दिन) वाली प्रजाति है। सीमित एवं ऐराबिक परिस्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसे ओडिशा तथा झारखंड में खेती के लिए वर्ष 2012 में विमोचित किया गया है। इसका दाना छोटा एवं मोटा है तथा औसत उत्पादकता 3.7 टन प्रति हेक्टेयर है। प्रत्येक वर्गमीटर में बालियों की संख्या (285) अधिक होती हैं। कल्लों की संख्या सामान्य (7–10) एवं मध्यम वजन सहित घनी बालियां होती हैं। यह प्रजाति पत्ता प्रध्वंस, भूरा धब्बा, आच्छद विगलन, तना छेदक (डेड हार्ट एवं व्हाइट इयर हेड), पत्ता मोड़क, व्होर्ल मैगट एवं राइस थ्रीप्स के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

सिंचित पारिस्थितिकी

शताब्दी (सीआर 146–7027–224): यह मध्यम अवधि की शीघ्र पकने (120 दिन) वाली, सिंचित पारितंत्र के लिए उपयुक्त अर्ध–बौनी किस्म की प्रजाति है। इसे पश्चिम बंगाल में खेती के लिए वर्ष 2000 में विमोचित तथा अधिसूचित किया गया है। इसका दाना लंबा पतला है एवं अच्छी गुणवत्ता वाला है एवं औसत उत्पादकता 4.0–5.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति जीवाणुज पत्ता अंगमारी, आच्छद अंगमारी तथा आच्छद विगलन के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। इसमें व्यापक मौसमी अनुकूलनशीलता है, धान के अनुकूल सभी मौसम में इसकी खेती की जा सकती है। जल्दी परिपक्व क्षमता के कारण, पूर्व मानसून वर्षा से पहले इसकी कटाई संभव है जिसके कारण शुष्क मौसम में खेती के लिए यह सबसे लोकप्रिय किस्म है। स्थानीय बोरो शुष्क मौसम प्रजातियों के स्थान पर इसकी खेती की जा सकती है।

नवीन (सीआर 749–20–2): यह मध्यम अवधि की शीघ्र पकने (115–120 दिन) वाली, सिंचित एवं ऊपरीभूमि पारितंत्र के लिए उपयुक्त, अर्ध–बौना (105 सेंटीमीटर) किस्म की प्रजाति है। इसे ओडिशा, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा तथा आंध्र प्रदेश में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2005 में विमोचित तथा 2006 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम मोटा है एवं औसत उत्पादकता खरीफ में 4.0–5.0 एवं रबी में 5.0–6.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति तना छेदक, प्रध्वंस तथा भूरा धब्बा के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

राजलक्ष्मी (सीआरएचआर–5): यह मध्यम अवधि में (125–135 दिन) पकने वाली, अर्ध–बौना (105–110 सेंटीमीटर) लोकप्रिय संकर प्रजाति है। पौध अवस्था में शीत सहिष्णु है, सिंचित एवं बोरो पारितंत्र के लिए उपयुक्त है। इसे ओडिशा तथा असम में खेती के लिए वर्ष 2005 में राज्य किस्म विमोचन समिति तथा 2010 में केंद्रीय किस्म विमोचन समिति द्वारा विमोचित एवं 2006 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना लंबा पतला है एवं औसत उत्पादकता 7.0–7.5 टन प्रति हेक्टेयर के बीच है। यह प्रजाति तना छेदक, भूरा पौध माहू, सफेदपीठ वाला पौध माहू, गालमिज, पत्ता प्रध्वंस तथा जीवाणुज पत्ता अंगमारी के प्रति सहिष्णु है। यह प्रजाति दौजी निकलने की अवस्था में 7–10 दिन की जल भराव स्थिति सहन कर सकता है।

अजय (सीआरएचआर–7): यह मध्यम अवधि में (125–135 दिन) पकने वाली, अर्ध–बौना (105–110 सेंटीमीटर) किस्म की लोकप्रिय संकर प्रजाति है। इसे ओडिशा के सिंचित तथा उथली निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2005 में विमोचित तथा 2006 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना लंबा पतला है एवं औसत उत्पादकता 7.0–7.5 टन प्रति हेक्टेयर के बीच है। यह प्रध्वंस प्रतिरोधी है तथा धान टुंग्रो वायरस के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है, जीवाणुज अंगमारी, तना छेदक तथा भूरा पौध माहू के विरुद्ध सहिष्णु है। यह प्रजाति दौजी निकलने की अवस्था में 7–10 दिन की जल भराव स्थिति सहन कर सकता है।

सत्यकृष्णा (सीआर एसी 2221–43): यह मध्यम अवधि की (135 दिन) पकने वाली, अर्ध–बौना (105 सेंटीमीटर) डबल हाप्लाएड प्रजाति है। इसे ओडिशा के सिंचित तथा उथली निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2008 में विमोचित तथा 2011 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना लंबा पतला है एवं औसत उत्पादकता 5.0–6.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति गला प्रध्वंस तथा आच्छद अंगमारी प्रतिरोधी है एवं पीला तना छेदक और गालमिज के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। इस किस्म में दौजी की संख्या कम होती है इसलिए इसकी रोपाई की सिफारिश कम दूरी (50 पूंजा प्रति वर्गमीटर) पर करने के लिए की गई है। इसे चावल की किस्म ललाट के स्थान पर सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

फाल्गुनी (सीआर धान 801): यह मध्यम अवधि की (115–120 दिन) शीघ्र पकने वाली, अर्ध–बौना डबल हाप्लाएड प्रजाति है। इसे ओडिशा के सिंचित क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2010 में विमोचित तथा 2011 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना लंबा पतला है एवं औसत उत्पादकता 5.0–6.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति पत्ता प्रध्वंस, गाल मिज तथा पत्ता मोड़क प्रतिरोधी है तथा आच्छद विगलन, धानु टुंग्रो वायरस, भूरा धब्बा, आच्छद अंगमारी, पीला तना छेदक भूरा पौध माहू, सफेदपीठ वाला पौध माहू और घास वाले पौध माहू के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

उन्नत ललाट (सीआरएमएएस–2621–7–1): यह मध्यम अवधि की (130 दिन) पकने वाली, अर्ध–बौना धान प्रजाति को ओडिशा के जीवाणुज पत्ता अंगमारी प्रवण क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2012 में तथा 2013 में विमोचित किया गया है। इसका दाना लंबा पतला है एवं अच्छी गुणवत्ता का है। इसकी औसत उत्पादकता 4.5–5.0 टन प्रति हेक्टेयर है। जीवाणुज पत्ता अंगमारी के विरुद्ध प्रतिरोधिता के कारण अधिक उपज देने वाली लोकप्रिय किस्म ललाट के स्थान पर इसकी खेती की जा सकती है। यह प्रजाति गाल मिज प्रतिरोधी है तथा तना छेदक, पत्ता प्रध्वंस, धानु टुंग्रो वायरस तथा आच्छद विगलन के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

उन्नत तपस्विनी (सीआरएमएएस–2622–7–6): यह मध्यम अवधि की (130 दिन) पकने वाली, कम ऊंचाई (90 सेंटीमीटर) वाली प्रजाति है। इसे ओडिशा के जीवाणुज पत्ता अंगमारी प्रवण क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2012 में तथा 2013 में विमोचित किया गया है। चूंकि सुधरित तपस्विनी में जीवाणुज पत्ता अंगमारी के विरुद्ध प्रतिरोधिता क्षमता है, अतः इसकी खेती अधिक उपज देने वाली एवं इस रोग के प्रति ग्राह्यशील तपस्विनी किस्म के स्थान पर की जा सकती है। इसका दाना छोटा एवं मोटा है तथा औसत उत्पादकता 4.5–5.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति भूरा पौध माहू, पीला तना छेदक तथा सफेदपीठ वाला पौध माहू प्रतिरोधी है तथा तना छेदक के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

बोरो / शुष्क मौसम धानः

चंदन (सीआर–898): मध्यम अवधि में (125 दिन) पकने वाली, अर्ध–बौनी किस्म को ओडिशा के बोरो क्षेत्र में खेती के लिए वर्ष 2008 में विमोचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उत्पादकता 5.5–6.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति भूरा पौध माहू, पीला तना छेदक, प्रध्वंस तथा जीवाणुज पत्ता अंगमारी के प्रति सहिष्णु है।

उथली निचलीभूमि पारिस्थितिकीः

पूजा (सीआर–629–256): यह विलंब अवधि में (150 दिन) पकने वाली, कम ऊंचाई (90–95 सेंटीमीटर) वाली धान की प्रजाति है। इसे ओडिशा, पश्चिम बंगाल, असम तथा मध्य प्रदेश के उथली निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए वर्ष 1999 में विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उत्पादकता 5.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति सभी प्रमुख रोगों एवं नाशककीटों के प्रति सहिष्णु है। अधिक आयु वाली पौध की विलंब में रोपाई के लिए यह प्रजाति उपयुक्त है तथा इसमें 25 सेंटीमीटर तक की जलाक्रांत स्थिति को सहन करने की क्षमता है।

स्वर्णा सब–1 (सीआर एसी–2539): विलंब अवधि में (143 दिन) पकने वाली अर्ध बौनी (100 सेंटीमीटर) किस्म की इस प्रजाति को ओडिशा के निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए वर्ष 2009 में विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है। लोकप्रिय स्वर्णा किस्म की आनुवांशिक पृष्ठभूमि में जलमग्नता सहिष्णुता जीन सब–1 के समावेश के कारण यह प्रजाति दो सप्ताह तक संपूर्ण जलमग्न स्थिति को सह सकता है। अतः इससे तटीय क्षेत्रों में अचानक आने वाली बाढ़ के कारण जल जमाव की समस्याओं का समाधान हो सकता है। स्वर्णा की तुलना मे इसकी बालियां अधिक उज्जवल हैं, दाना मध्यम पतला है। इसकी औसत उत्पादकता 5.0–5.5 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति सभी प्रमुख रोगों एवं नाशककीटों के प्रति सहिष्णु है।

रीता (सीआर 780–1937–1–3): यह विलंब अवधि में (145–150 दिन) पकने वाली, अर्ध बौनी (110 सेंटीमीटर) किस्म है। इसे ओडिशा, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु तथा आंध्र प्रदेश के उथली निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2010 में विमोचित एवं 2011 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उत्पादकता 5.05 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति पत्ता प्रध्वंस, गला प्रध्वंस, आच्छद विगलन, आच्छद अंगमारी, भूरा धब्बा, तना छेदक तथा पत्ता मोड़क के प्रति सहिष्णु है। यह लगभग एक सप्ताह तक जलनिमग्नता सहन कर सकता है।

सीआर धान 300 (सीआर 2301–5) : यह मध्यम विलंब अवधि में (140 दिन) पकने वाली अर्ध–बौनी (110–115 सेंटीमीटर) किस्म है। इसे ओडिशा, बिहार, गुजरात तथा महाराष्ट्र के सिंचितध्उथली निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए विमोचित किया गया है। इसका दाना लंबा पतला है और औसत उत्पादकता 5.0–5.5 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति पत्ता मोड़क तथा राइस व्होर्ल मैगट प्रतिरोधी है तथा सफेदपीठवाला पौध माहू, गाल मिज, राइस हिस्पा, थ्रिप्स, तना छेदक, पत्ता एवं गला प्रध्वंस, आच्छद विगलन तथा धान टुंग्रो रोग के प्रति मध्यम रूप से सहिष्णु है।

सीआर धान 701 (सीआरएचआर 32): यह देश की पहली विलंब अवधि में (142–145 दिन) पकने वाली संकर धान प्रजाति है जिसे बिहार, ओडिशा एवं गुजरात के सिंचित तथा उथली निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2010 में विमोचित एवं 2012 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उपज क्षमता 6.0–6.5 टन प्रति हेक्टेयर के बीच है। संकर धान श्रेणी में लोकप्रिय किस्म ''स्वर्णा'' के स्थान पर इसकी खेती की जा सकती है। यह जल भराव एवं कम प्रकाश परिस्थिति को सह सकता है। यह प्रजाति धान टुंग्रो रोग, जीवाणुज अंगमारी, हरा पौध माहू एवं पत्ता गला प्रध्वंस के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

अर्ध गहराध्जल भराव पारिस्थितिकी

सरला (सीआर 260–77): यह विलंब अवधि में (160 दिन) पकने वाली अर्ध लंबी ऊंचाई (110–120 सेंटीमीटर), न गिरने वाली, प्रकाशसंवेदनशील धान प्रजाति है जिसे ओडिशा के तटीय/अर्ध गहरा क्षेत्रों में खेती के लिए वर्ष 2000 में विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उपज क्षमता 4.0–5.0 टन प्रति हेक्टेयर है। बहुत अच्छी गुणवत्ता वाले दाना होने के कारण किसानों के बीच यह बहुत लोकप्रिय है। इस प्रजाति की 50 दिनों की आयु वाली पौध की रोपाई करने पर भी उपज में नुकसान नहीं होता है। यह किस्म 50 सेंटीमीटर तक की जल भराव स्थिति को सहन कर सकता है।

दुर्गा (सीआर 683–123): यह विलंब अवधि में (155 दिन) पकने वाली, लंबी ऊंचाई (125–135 सेंटीमीटर), प्रकाशसंवेदनशील धान प्रजाति है जिसे ओडिशा के निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए वर्ष 2000 में विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उपज क्षमता 4.5 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति जीवाणुज पत्ता अंगमारी, आच्छद विगलन तथा भूरा पौध माहू प्रतिरोधी है। इस प्रजाति में दीर्घीकरण क्षमता है। जैसे ही जल स्तर बढ़ता जाता है, पौधे का तना लंबा होता रहता है जिसके फलस्वरूप यह किस्म 100 सेंटीमीटर तक की जलजमाव स्थिति को सहन कर सकता है।

गायत्री (सीआर 210–1018): यह विलंब अवधि में (160 दिन) पकने वाली अर्ध लंबी (110 सेंटीमीटर), प्रकाशसंवेदनशील लोकप्रिय धान प्रजाति है जिसे ओडिशा, पश्चिम बंगाल तथा बिहार के निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए वर्ष 1988 में विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है। इसका दाना छोटा मोटा है एवं औसत उपज क्षमता 5.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति प्रमुख रोगों एवं नाशककीटों के विरुद्ध सहिष्णु है। इसके दानों में सुप्तावस्था क्षमता है। यह किस्म 50 सेंटीमीटर तक की जल भराव स्थिति को सहन कर सकता है तथा विलंबित रोपाई के लिए उपयुक्त है।

वर्षाधान (सीआरएलसी 899): यह विलंब अवधि में (160 दिन) पकने वाली, लंबी ऊंचाई की (150 सेंटीमीटर), न गिरने वाली एवं प्रकाशसंवेदनशील लोकप्रिय धान प्रजाति है। इसका पुआल सख्त है। इसे ओडिशा, पश्चिम बंगाल तथा असम के निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2005 में विमोचित एवं 2006 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना लंबा मोटा है एवं औसत उपज क्षमता 4.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति गला प्रध्वंस, जीवाणुज पत्ता अंगमारी, आच्छद विगलन तथा सफेदपीठ वाला पौध माहू के प्रति सहिष्णु है। यह किस्म 75 सेंटीमीटर तक दीर्घकालिक जल भराव स्थिति को सहन कर सकता है।

सीआर धान 500 (सीआर 2285–6–6–31): यह विलंब अवधि में (160 दिन) पकने वाली, लंबी ऊंचाई की प्रजाति है जिसे ओडिशा तथा उत्तर प्रदेश के गहरा जल क्षेत्रों में खेती के लिए वर्ष 2012 में विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उपज क्षमता 3.3 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति थ्रिप्स एवं पत्ता मोड़क प्रतिरोधी है, पत्ता प्रध्वंस, गला प्रध्वंस, गालमिज तथा पीला तना छेदक के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

जयंती धान (सीआर धान 503): यह विलंब अवधि में पकने वाली (160 दिन) प्रजाति है जिसे ओडिशा के गहरा जल क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2011 एवं 2012 में विमोचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उपज क्षमता 4.6 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति पीला तना छेदक, पत्ता मोड़क, व्होर्ल मैगट एवं थ्रीप्स के प्रति मध्यम रूप से सहिष्णु है तथा पत्ता प्रध्वंस, गला प्रध्वंस, आच्छद अंगमारी, आच्छद विगलन एवं धान टुंग्रो रोग के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। यह किस्म एक मीटर तक जल भराव स्थिति को सहन कर सकता है।

तटीय लवण पारिस्थितिकी

लुणा सुवर्णा (सीआर धान 403): यह विलंब अवधि में (150 दिन) पकने वाली, लंबी ऊंचाई की (135 सेंटीमीटर), लवण सहिष्णु (5.0 से 8.0 घनत्व प्रति मीटर) प्रजाति है जिसे ओडिशा के तटीय लवणता क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2010 में विमोचित एवं 2011 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उपज क्षमता 3.5 से 4.0 टन प्रति हेक्टेयर के बीच है। यह किस्म 45 सेंटीमीटर तक जलजमाव स्थिति को सहन कर सकता है। जुलाई माह के 15 तारीख के पहले 40 दिन आयु वाले पौध की शीघ्र रोपाई के लिए इसकी सिफारिश की जाती है। यह प्रध्वंस प्रतिरोधी है, पीला तना छेदक, भूरा पौध माहू तथा मोड़क पत्ता के प्रति सहिष्णु है।

लुणा संपद (सीआर धान 402): यह मध्यम विलंब अवधि में (140 दिन) पकने वाली, लंबी ऊंचाई की (130 सेंटीमीटर), लवण सहिष्णु (5.0 से 8.0 घनत्व प्रति मीटर) प्रजाति है जिसे ओडिशा के तटीय लवणता एवं वर्षाश्रित लवण परिस्थिति वाली क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2010 में विमोचित एवं 2011 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम मोटा है एवं औसत उपज क्षमता 3.6 से 4.2 टन प्रति हेक्टेयर के बीच है। यह प्रध्वंस प्रतिरोधी है, धान टुंग्रो रोग, आच्छद अंगमारी तथा तना छेदक के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

लुणा वरियल (सीआर धान 406): यह विलंब अवधि में (150–155 दिन) पकने वाली, लवण सहिष्णु (5.0 से 8.0 घनत्व प्रति मीटर) धान प्रजाति है जिसे ओडिशा के तटीय लवणता परिस्थिति वाली क्षेत्रों में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2012 में विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है। इसका दाना छोटा एवं मोटा है एवं औसत उपज क्षमता 3.9 टन प्रति हेक्टेयर है। यह पीला तना छेदक के प्रति सहिष्णु है तथा आच्छद अंगमारी तथा जीवाणुज पत्ता अंगमारी के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

लुणा शंखी (सीआर धान 405): यह शीघ्र अवधि में (110 दिन) पकने वाली प्रजाति है जिसे ओडिशा के तटीय लवणता क्षेत्रों के सिंचित परिस्थिति में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2012 में विमोचित एवं 2013 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उपज क्षमता 4.6 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रध्वंस सहिष्णु है तथा आच्छद अंगमारी के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। लवणी क्षेत्रों में शुष्क मौसम के दौरान खेती के लिए बहुत उपयुक्त है।

सुगंधित चावलः

नुआ कालाजीरा (आईईटी 18393): यह विलंब अवधि में (145 दिन) पकने वाली, लंबी ऊंचाई की (140 सेंटीमीटर) प्रकाशसंवेदनशील धान प्रजाति है जिसे ओडिशा के निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए वर्ष 2008 में विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है। इसके दाने का छिलका काले रंग का है, दाना छोटा–मोटा एवं सुगंधित (गैर बासमती) किस्म का है। औसत उपज क्षमता 3.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह धान टुंग्रो रोग प्रतिरोधी है, पत्ता प्रध्वंस तथा आच्छद विगलन के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। कम दूरी पर रोपाई के लिए तथा जैविक खेती के लिए इसकी सिफारिश की गई है।

नुआ धूसरा (आईईटी 18395): यह विलंब अवधि में (145 दिन) पकने वाली, लंबी ऊंचाई की (142 सेंटीमीटर) प्रकाशसंवेदनशील लोकप्रिय धान प्रजाति है जिसे ओडिशा के निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए वर्ष 2008 में विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है। इसका दाना छोटा मोटा है एवं औसत उपज क्षमता 3.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह आच्छद विगलन, गला प्रध्वंस तथा धान टुंग्रो रोग प्रतिरोधी है एवं गालमिज के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। यह किस्म 3–4 दिन की छोटी अवधि के लिए जलनिमग्नता सह सकता है।

नुआ चिनीकामिनी (आईईटी 18394): यह विलंब अवधि में (145–150 दिन) पकने वाली, लंबी ऊंचाई की (140 सेंटीमीटर) प्रकाशसंवेदनशील सुगंधित गैर बासमती धान प्रजाति है जिसे ओडिशा के निचलीभूमि क्षेत्रों तथा वर्षाश्रित निचलीभूमियों में खेती के लिए वर्ष 2010 में विमोचित एवं 2011 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना छोटा–मोटा है एवं औसत उपज क्षमता 3.5 टन प्रति हेक्टेयर है। यह आच्छद विगलन, गला प्रध्वंस तथा धान टुंग्रो रोग एवं गालमिज प्रतिरोधी है तथा तना छेदक के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। कम दूरी पर रोपाई के लिए इसकी सिफारिश की गई है।

पूर्णभोग (सीआरएम 2203–4): यह विलंब अवधि में (140–145 दिन) पकने वाली बौनी तथा सुगंधित गैर बासमती धान प्रजाति है जिसे ओडिशा के सिंचित एवं उथली निचलीभूमि क्षेत्रों में खेती के लिए वर्ष 2012 में विमोचित में किया गया है। इसका दाना लंबा पतला है एवं औसत उपज क्षमता 4.5–5.0 टन प्रति हेक्टेयर के बीच है। यह गला प्रध्वंस, गाल मिज प्रतिरोधी है तथा आच्छद विगलन एवं पीला तना छेदक के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

सीआर सुगंध धान 907 (सीआर 2616–3–3–31): यह विलंब अवधि में (150 दिन) पकने वाली सुगंधित गैर बासमती धान प्रजाति है जिसे ओडिशा, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश तथा गुजरात के सिंचित परिस्थिति में खेती के लिए क्रमशः वर्ष 2012 में विमोचित तथा वर्ष 2013 में अधिसूचित किया गया है। इसका दाना मध्यम पतला है एवं औसत उपज क्षमता 4.5–5.0 टन प्रति हेक्टेयर के बीच है। यह गला प्रध्वंस, गाल मिज प्रतिरोधी है तथा आच्छद विगलन एवं पीला तना छेदक के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

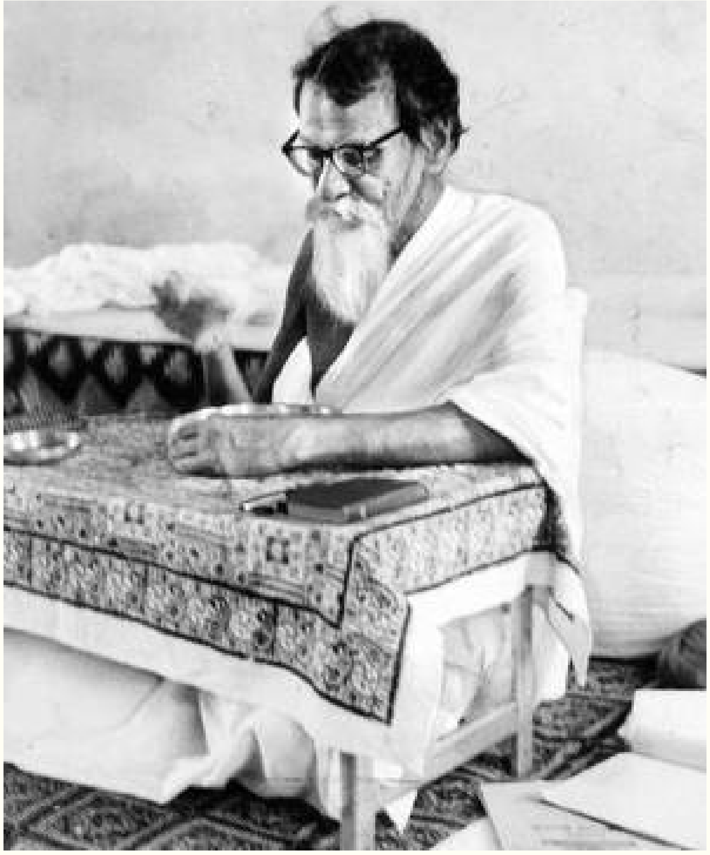

जब कोई वस्तु सत्य है, तो उसे सिद्ध करने करने के लिए किसी तर्क का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं है।

आचार्य विनोबा भावे

पारम्परिक चावल उत्पादक राज्य में कृषकों की आय वृद्धि हेतु संकर (हाइब्रिड) चावल तकनीकी एक उत्तम विकल्प

राम लखन वर्मा

चावल ओडिशा राज्य की प्रमुख फसल है। यहाँ इसकी खेती लगभग 4.17 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है जो कुल 8.30 मिलियन टन उत्पादन के साथ राज्य की अर्थव्यवस्था से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। राज्य में इसकी खेती प्रमुख रूप से वर्षाश्रित (सिंचित–27.4 प्रतिशत, वर्षाश्रित भूमि–19.1 प्रतिशत, मध्यमभूमि–12 प्रतिशत, उथली निचलीभूमि–22.5 प्रतिशत, अर्ध–गहरा–7.9 प्रतिशत, और गहराजल–3.4 प्रतिशत) भूमि पर की जाती है जिसका 50 प्रतिशत भाग सिंचित और उथला है। ओडिशा राज्य हेतु 200 से ज्यादा धान की उच्च उत्पादक प्रजातियां विकसित एवं विमोचित हो चुकी हैं जिनका उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है। परन्तु राज्य की खाद्य की सतत् आवश्यकताओं की आपूर्ति एवं आर्थिक समर्थता को प्रगतिशील बनाये रखने हेतु चावल उत्पादकता वृद्धि के सार्थक विधा 'संकर धान तकनीकी' जो कि अन्य उपलब्ध किस्मों से अधिक उपजाऊ (20–30 प्रतिशत) होती हैं को अपनाना अपरिहार्य है। ओडिशा राज्य संकर चावल की खेती और बीज उत्पादन के लिए सबसे उपयुक्त है क्योंकि यहाँ का जलवायुवीय परिवेश (तापमान, वर्षा, सापेक्षिक आर्द्रता–36 प्रतिशत से 98 प्रतिशत) संकर धान के बीज उत्पादन एवं खेती के अनुकूल है (तालिका–1)।

राज्य ने पिछले कई वर्षों से संकर चावल की खेती को अपनाया है। इसके लिए पंद्रह से ज्यादा संकर किस्में जो कि ओडिशा हेतु उपयोगी पायी गयी हैं को विमोचित किया गया है (तालिका 2)। संकर धान को अन्य उपजाऊ चावल किस्मों की तुलना में अच्छा पारितोषिक पाया गया है (1.0–1.5 टन/हैं, अधिक उपज देने वाली किस्मों की तुलना में 15–25 प्रतिशत अधिक उपज देता है) (राउत एवं सहयोगी, 2020)। यह तकनीक ओडिशा में पर्याप्त उपज (1.0 टन/है. से अधिक उपज श्रेष्ठता) (टी के सांमत, 2014) के साथ उपयुक्त पाई गई है। इस उद्यम की उपयोगिता बी.जी.आर.ई.आई. और एन.एफ.एस.एम. योजनाओं के माध्यम से पूर्वी राज्यों (ओडिशा सहित) में भी मान्य है। हाल ही में ओडिशा सरकार ने भी चावल की उत्पादकता वृद्धि को लक्षित करते हुए राज्य में चावल किस्मों का प्रजातीय बीज प्रस्थापन दर ॑;त्त्ःद्ध को बढ़ाने के उद्देश्य से संकर फसलों को अपनाने पर बल दिया है। चावल के विभिन्न प्रतिस्थापन अनुपात (वीआरआर) को हाइब्रिड के साथ बदलकर लक्षित किया है जैसा कि विदित है, संकर चावल 100 प्रतिशत प्रजातीय बीज विश्थापन के साथ–साथ अतिरिक्त 20000.0 रूपये प्रति हेक्टेयर से अधिक शुद्ध आय को भी सुनिश्चित करता है। इसके अतिरिक्त , संकर चावल का बीज उत्पादन भी एक बहुत ही लाभदायक उद्यम है, प्रति हेक्टेयर 75000 से 85000 हजार रूपये प्रति हेक्टेयर शुद्ध आय जो कि अन्य उच्च उत्पादक किस्मों के बीज उत्पादन से लगभग 4 गुना अधिक है को सुनिश्चित करता है। हाइब्रिड चावल बीज उत्पादन, जो पहले आंध्र प्रदेश के कुछ जिलों में केंद्रित था, अब ओडिशा और पश्चिम बंगाल में भी संभव है। दस से अधिक प्रमुख निजी बीज एजेंसियां (बायर–2000 एकड़, यूएस एग्री–1000 एकड़, धन्या–600 एकड़, वीएनआर–300 एकड़, सिंजेंटा–1000 एकड़, पायनियर–700 एकड़, पान सीड–100 एकड़, संसार एग्रोपोल–300 एकड़, साईं श्रद्धा–60 एकड़, बालाजी सीड्स–200 एकड़, माली सीड–60 एकड़, एनिमा सीड्स–1200 एकड़ आदि) बड़े पैमाने पर बीज उत्पादन में शामिल हैं और कई और ऐसे ही ओडिशा में शुरुआत कर रहे हैं। खरीफ, 2016 के दौरान, कुल 4510 टन 22 संकर का उत्पादन और बिक्री की गई थी, जो अनुमानतः देश की लगभग 0.30 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र को कवर किया था। विशेष रूप से, इन क्षेत्रों को रबी की फसल के लिए भी जाना जाता है जिनका रबी मौसम कुल चावल उत्पादन का 70 प्रतिशत हिस्सा हैं। राज्य सरकार ने राज्य में उत्पादकता और किसानों की आर्थिक स्थिति को बढ़ावा देने के लिए संकर चावल के उत्पादन को बढ़ाने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं। केंद्र सरकार ओडिशा में हाइब्रिड बीज का उत्पादन करने के लिए बीज कंपनियों के लिए केंद्रीय योजना (आर.के.वी. वाई.) के माध्यम से अवसर प्रदान करती है और राज्य सरकार इस उद्यम में शामिल किसानों को सब्सिडी के तौर पर प्रति हेक्टेयर बीज उत्पादन पर 20,000.0 रुपये प्रति प्रदान करती है।

तालिका–1

स्थान		जनवरी		फरवरी		मार्च		अप्रैल		मई	
		तापमान	आरएच	तापमान	आरएच	तापमान	आरएच	तापमान	आरएच	तापमान	आरएच
ओडिशा	बरगढ़	20	57	23	48	28	39	31	38	34	42
	मल्कानगिरि	21	62	23	54	27	51	30	53	31	58
	कालाहांडी	21	62	23	54	27	51	30	53	31	58
	क्योंझर	21	64	24	63	28	63	30	66	31	71
	ढेंकानाल	23	68	26	64	30	66	32	69	32	72
	संबलपुर	20	61	23	55	27	45	32	40	35	40
	कटक	22	60	25	62	29	65	30	67	32	62
	खुर्दा	23	60	24	61	29	63	31	66	32	65
	बालासोर	21	64	24	63	28	63	32	66	32	71
	रायगढ़	20	62	23	54	29	51	31	53	31	58
पश्चिम बंगाल	मेदिनीपुर	21	64	24	63	28	63	30	66	31	71
	बर्धमान	19	60	22	53	27	43	31	42	32	55
तेंलगाना	करीमनगर	23	60	25	55	27	53	30	52	33	44
	वांरगल	22	60	24	55	28	53	30	52	33	44
	कुरनूल	20	52	24	45	28	41	33	41	35	44

तालिका–2

संकर का नाम	विमोचन वर्ष	अवधि (दिन)	औसत (टन/हैक्टर)	दाना प्रकार	समझौता पर हस्ताक्षर
राजलक्ष्मी	2006	125.135	7.0–7.5 टन/है	लंबा पतला	11
अजय	2006	125.135	7.0–7.5 टन/है	लंबा पतला	06
सीआर धान–701	2014	145.150	7.0–7.5 टन/है	मध्यम पतला	09
अराइजधानी	2013	145.150	6.0–6.5 टन/है	मध्यम मोटा	जनक संस्थान
27 पी 31	2015	130	6.5–7.0 टन/है	लंबा पतला	जनक संस्थान

बी.एस.6444 गोल्ड	2015	135.140	6.5–7.0 टन/है	मध्यम मोटा	जनक संस्थान
एन के 16520	2016	130	7.0–7.5 टन/है	लंबा पतला	जनक संस्थान
एमईपीएच–126	2017	135.140	7.0–7.5 टन/है	लंबा पतला	जनक संस्थान
28 पी.09	2017	140	6.5–7.0 टन/है	लंबा पतला	जनक संस्थान
28 पी.67	2017	135	7.0–7.5 टन/है	लंबा पतला	जनक संस्थान
28 पी.41	2017	130	6.5–7.0 टन/है	लंबा पतला	जनक संस्थान
बायो–799	2017	130	7.0–7.5 टन/है	लंबा पतला	जनक संस्थान
सीएनआरएच–102	2017	130	7.0–7.5 टन/है	लंबा पतला	जनक संस्थान
28 पी.36	2018	130	6.0–6.5 टन/है	मध्यम पतला	जनक संस्थान

संकर धान बीज उत्पादन के लिए उपयुक्त क्षेत्र

संकर चावल के बीज उत्पादन के लिए विशिष्ट जलवायु के साथ–साथ जनकीय विशिष्टता भी आवश्यक है। पहले तेलंगाना राज्य संकर चावल बीज के लिए जाना जाता था, जिसमें करीमनगर, वारंगल, निजामाबाद, खम्मम और नलगोंडा जिलों में 80 प्रतिशत से अधिक बीज का उत्पादन होता था। आदर्श जलवायु परिस्थितियों (24–30 डिग्री सेल्सियस तापमान, 70 प्रतिशत आरएच से अधिक, मध्यम हवा का वेग, 2–3 मीटर/सेकंड), प्रगतिशील और ग्रहणशील बीज उत्पादकों और हैदराबाद के आसपास और निजी क्षेत्र की बीज एजेंसियों की सक्रिय उपस्थिति बढ़ने के लिए मुख्य कारण हैं। आमतौर पर, अनुसंधान संस्थानों के साथ–साथ राज्य सरकार के प्रयासों से बीज उत्पादन क्षेत्र का विस्तार ओडिशा, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड के निचलीभूमि क्षेत्रों में किया जाता है, जिससे 100 प्रतिशत बीज प्रतिस्थापन दर के साथ देश के 20 मिलियन हैक्टर चावल क्षेत्र से 3.0 लाख टन मांग पूरा हो सकता है (तालिका–1)।

चित्र 1– ओडिशा राज्य में खेती हेतु संकर धान की प्रसिद्ध किस्म राजलक्ष्मी

चित्र 2– ओडिशा राज्य में खेती हेतु संकर धान की प्रसिद्ध किस्म सीआर धान 701

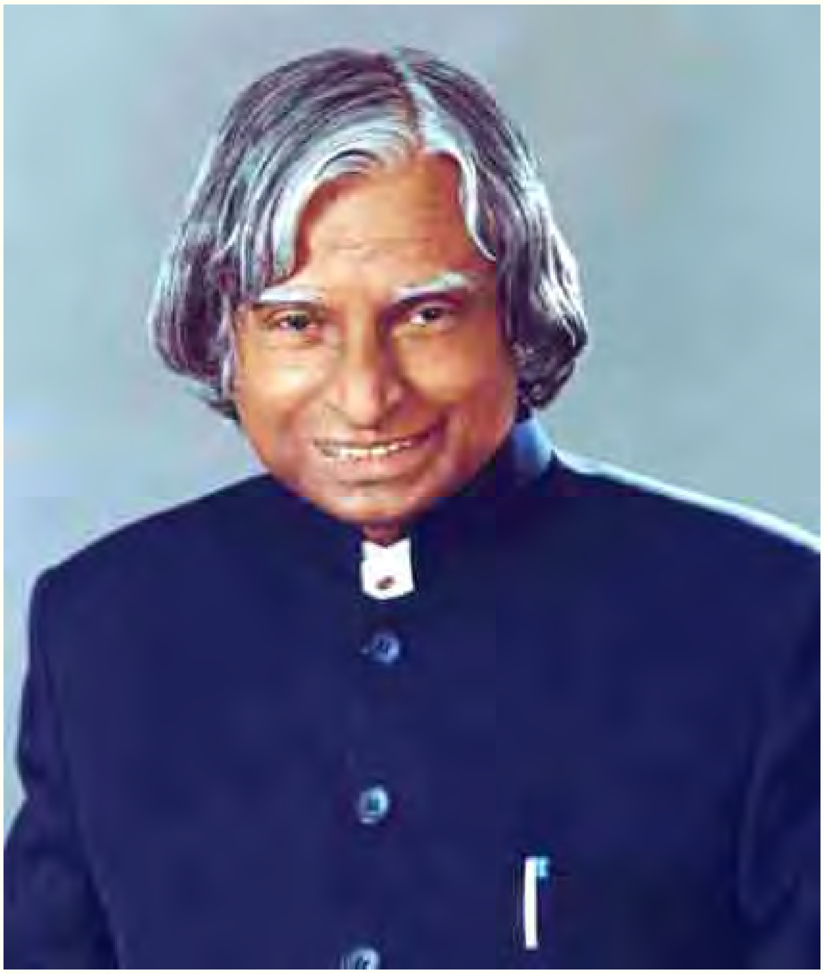

सपना वह नहीं है जो आप नींद में देखे,
सपने वो हैं जो आपको नींद ही नहीं आने दे।

डा ए पी जे अब्दुल कलाम

दोहरी रोपाई–निचलीभूमियों में चावल की खेती के लिए एक प्रासंगिक रणनीति

विजय कुमार एस., ए.के. नायक, कृष्ण कांत मीना, प्रेमपाल कुमार

दोहरी रोपाई एक पारंपरिक फसल स्थापना प्रणाली है जिसमें धान के पौधों की रोपाई दो बार की जाती है, पहले वे द्वितीयक पौधशाला में और फिर मुख्य खेत में। यह विशेष रूप से धान के रबी के मौसम के दौरान निचलीभूमियों के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में एक आकस्मिक रणनीति है। दोहरी रोपाई की आवश्यकता तब उत्पन्न होती है जब मुख्य खेत बाढ़ के पानी का निरंतर जमाव के कारण तैयार नहीं हो पाता है या मानसून के आने में विलंब होता है। यह जलमग्नता के जोखिम का प्रबंधन करने के लिए किसानों द्वारा विकसित एक स्वदेशी तकनीक है। एकल रोपाई वाले धान, कम दिनों वाली अंकुरित पौधों की ऊंचाई पर्याप्त नहीं होती है और डूबने का खतरा रहता है। जबकि, दोहरी रोपाई किए गए अंकुरित पौधों की ऊंचाई लंबी होती है और अधिक समय तक जलमग्नता का सामना कर सकती हैं। पूर्वी भारत में बाढ़ प्रभावित धान का क्षेत्र लगभग 2.25 मिलियन हैक्टर है, जो कि अधिकांश वर्षाश्रित है। मानसून की अनिश्चितता के कारण धान की बुवाई का समय अप्रत्याशित हो जाती है। ऐसी स्थिति में दोहरी रोपाई एक समाधान प्रदान कर सकता है। कभी–कभी यह अंकुरित पौधों की सीमित संख्या या इनकी कमी की परिस्थिति में अंकुर गुणा के लिए एक विधि के रूप में उपयोग किया जाता है। यह स्थिति अक्सर तब उत्पन्न होती है जब बाढ़ के कारण खेत में खड़ी फसल को नुकसान होता है।

दोहरी रोपाई प्रणाली पूर्वी उत्तर प्रदेश के बलिया, गाजीपुर, मऊ, वाराणसी और चंदौली जिलों, बिहार, पश्चिम बंगाल, मेघालय (गारो हिल्स क्षेत्र), असम और बांग्लादेश में सबसे अधिक प्रचलित है। इस पद्धति को विभिन्न नामों में जाना जाता है जो देश एवं क्षेत्र के अनुसार बदलते हैं। असम में, इसे बल्लन प्रणाली, मेघालय में चंगेजिनी, बिहार में खरौंहा, पूर्वी उत्तर प्रदेश में कलाम या सुंडा के रूप में और बांग्लादेश में बालोन प्रणाली के रूप में जाना जाता है। रोपाई के लिए समय की अवधि कई बार बहुत बड़ी होती है जो फसल मौसम के आरंभ के दौरान खेत में मौजूद प्रतिकूल नमी/जल स्तर के कारण जुलाई के अंत से अगस्त के अंत तक फैली होती है। विलंबित रोपाई की स्थिति में, एक ही नर्सरी में पौधों की अधिक संख्या, पोषक तत्वों की कमी और भूरा धब्बा और पत्ता प्रध्वंस जैसी बीमारियों के कारण 2–3 माह तक अंकुरित पौधों को स्वस्थ रूप में बनाए रखना संभव नहीं है। अतः, पूर्वी भारत के बाढ़ प्रभावित निचलीभूमि क्षेत्रों में दोहरी रोपाई एक प्रासंगिक उपाय के रूप में वांछनीय है।

दोहरी रोपाई धान प्रणाली के तहत फसल प्रबंधन

पारंपरिक रोपाई वाले धान फसल में 60 किग्रा/हेक्टेयर की बीज की जरूरत होती है जबकि दोहरी रोपाई में 35–40 किग्रा./हेक्टेयर की बीज की आवश्यकता है जो तुलनात्मक दृष्टि से काफी कम है। इस विधि में, प्राथमिक पौधशाला (असम में बेचन बाड़ी) में सबसे पहले बीजों को मोटे तौर पर बोया जाता है। चार सप्ताह के बाद, प्राथमिक पौधशाला से अंकुरित पौधों को उखाड़कर एक द्वितीयक पौधशाला में (स्थानीय रूप से असम में बोलोन बाड़ी के रूप में जाना जाता है) कम दूरी पर (7–10 सेंटीमीटर) उचित उर्वरक प्रयोग सहित 9 से 10 पौध/पूंजा दर पर रोपाई की जाती है। द्वितीयक पौधशाला को एक मुख्य धान के खेत (असम में धान बाड़ी) की तरह देखभाल की जाती है। पौधों के पोषण के लिए रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। इसके 3 से 4 सप्ताह के बाद, द्वितीयक पौधशाला से रोपे पौधों को उखाड़ दिया जाता है और बाढ़ का खतरा खत्म हो जाने पर एवं पौधे लम्बे होने पर मुख्य खेत में रोपाई की जाती है। दूसरी रोपाई तब की जाती है जब लगातार भारी बारिश होने की संभावना कम होती है और यदि ऐसा होता है, तो भी रोपाई से पौध जलमग्न नहीं होंगी। इस प्रकार, मानसून के चरम के दौरान भारी बारिश से दोहरी रोपाई के कारण अंकुरित पौध डूबने से बच जाती हैं। अंतिम रोपाई के समय प्राथमिक पौधशाला और द्वितीयक पौधशाला में भी कम रोपाई की जाती है इसलिए कि कोई भी भूमि बर्बाद नहीं हो। इस प्रणाली में भूमि की तैयारी, पौध को उखाड़ने, अंकुरित पौधों को अलग करने और फिर से रोपाई के लिए अतिरिक्त श्रम आवश्यकता के कारण श्रमिकों की आवश्यकता थोड़ी अधिक होती है। बढ़ी हुई श्रम आवश्यकता से उत्पादन लागत बढ़ती है। लेकिन, दो बार रोपाई के लिए श्रम की बढ़ी हुई लागत के बावजूद, बीज की कम मात्रा, सिंचाई करने की कम बारी, खरपतवारमुक्त प्रबंधन के कारण उच्च पैदावार प्राप्त किया जाता है। सुंडा खेती पद्धति में यह संभव हुआ है। एकल रोपाई और दोहरी रोपाई के बीच अंतर तालिका 1 में दिया गया है।

तालिका 1. एकल रोपाई और दोहरी रोपाई के बीच अंतर

विशेषताएं	एकल रोपाई	दोहरी रोपाई
किस्म	प्रकाशसंवेदनशील	प्रकाशसंवेदनशील
अवधि	छोटा	लंबा
जल आवश्यकता	अधिक	कम
श्रम आवश्यकता	कम	अधिक
खेती लागत	कम	अधिक
खरपतवार	अधिक	कम
रोग एवं कीट	अधिक	कम
अधूरे दानों की संख्या	अधिक	कम
बलियों की संख्या	कम	अधिक
उपज	कम	अधिक
शुद्ध आय	कम	अधिक
पशु चारा के रूप में पुआल	पुआल नरम होने के कारण पशुओं द्वारा पसंद किया जाता है	पुआल सख्त होने के कारण पशुओं द्वारा कम पसंद किया जाता है

दोहरी रोपाई में किस्म चयन

धान की सभी किस्में दोहरी रोपाई के लिए उपयुक्त नहीं हैं। लघु अवधि वाली प्रकाशसंवेदनशील किस्में दोहरे रोपाई के लिए उपयुक्त नहीं हैं। ये किस्में बुवाई करने के बाद विशेष तिथि तक फूल लगने की अवस्था में पहुंचती है। इसके अलावा, लघु अवधि वाली दोहरी रोपाई के किस्मों की फसल में कम कल्ले होती हैं। क्योंकि अधिक दिनों वाली अंकुरित पौधों के रोपण में दौजियां अधिक होती हैं जबकि कम दिनों वाली अंकुरित पौधों में समय की कमी के कारण कम दौजियां होती हैं। अतः लंबी अवधि (150 दिन) की प्रकाशसंवेदनशील धान की किस्में दोहरी रोपाई के लिए अनुकूल होती हैं। आमतौर पर दोहरी रोपाई के तहत खेती की जाने वाली किस्मों की तालिका 2 में दिए गए हैं।

तालिका 2.

राज्य	किस्में
उत्तर प्रदेश, बिहार, असम, मेघालय के गारो हिल्स जिलों में	स्वर्णा, रणजीत, स्वर्णा सब 1, मनोहरसली केहोल, रेसू, बारुट, टिपी, जबिलिन और कोचुजिसिम

दोहरी रोपाई के तहत अधिक दिनों वाली अंकुरित पौधों की एकल रोपाई से उच्च उपज की प्राप्त करने के कारण

इष्टतम फसल स्थापना का निर्धारण : प्रतिकूल मौसम (बाढ़/सूखा) की स्थिति के तहत कम दिनों वाली अंकुरित पौधों के नष्ट दर अधिक होती हैं। जबकि, दोहरी रोपाई प्रणाली के तहत, प्रतिकूल वातावरण में कम दिनों वाली पौधों और एकल रोपाई किए गए बीजों की तुलना में लंबा और अधिक दिनों वाली अंकुरित पौध बेहतर रहते हैं। इस विधि में उत्पादित पौध लम्बी, स्वस्थ होती हैं और रोपाई के समय या रोपाई के तुरंत बाद खेत में जमा अधिक जल गहराई को आसानी से पार कर जाती हैं।

स्वस्थ अंकुरित पौधों की रोपाई : दोहरी रोपाई के तहत, अंकुरित पौधों के तने मोटे होते हैं और बेहतर खाद्य भंडार होते हैं। मोटी तनें धान की फसल को गिरने से रोकती हैं और बेहतर खाद्य भंडार पौधों को लंबे समय तक जल जमाव का सामना करने में मदद करता है।

विकास कारकों (पानी, पोषक तत्व, प्रकाश) की कम प्रतिस्पर्धाः पारंपरिक प्रत्यारोपण की तुलना में दोहरी रोपाई प्रणाली के तहत पौधों की वृद्धि के कारकों की प्रतिस्पर्धा में काफी कम होती है जिससे भूसीदार दाने (अधूरे भरे/बाली) कम होते हैं और बालियों के वजन एवं पैदावार बढ़ता है।

न्यूनतम खरपतवार प्रतियोगिता/वृद्धिः द्वितीयक नर्सरी में पौधों के बीच कम प्रतिस्पर्धा के कारण, पारंपरिक नर्सरी से प्राप्त अंकुरों की तुलना में इस विधि से प्राप्त अंकुरों में लंबाई, जड़ की लंबाई और मात्रा अधिक होती हैं। छोटे एवं कम अवधि के पौध की तुलना में लंबे एवं स्वस्थ अंकुरित पौध खरपतवार की वृद्धि को बेहतर तरीके से दबाते हैं।

नाशकजीव और रोग संक्रमण कम होता है : रोपाई के समय नाशकजीव और रोगग्रस्त पौधों को हटा दिया जाता है जिससे रोग और अन्य कीटों का प्रकोप फैलने से रुकता है।

बेहतर वातायन : उपयुक्त दूरी पर रोपाई और उचित जल प्रबंधन से धान की खड़ी फसल को उपयुक्त सूक्ष्म अनुकूल वातावरण मिलता है।

उच्च पोषक तत्व उपयोग दक्षता : दोहरी रोपाई प्रणाली में नियंत्रित जल प्रबंधन के कारण पोषक तत्वों की हानि विशेषकर नाइट्रोजन से कम हो जाती है। एकल रोपाई पौधों की तुलना में दोहरी रोपाई की गई भूखंडों के तहत पौधे आमतौर पर स्वस्थ होते हैं, बालियां लंबी होती हैं एवं दाने भरे हुए होते हैं।

दोहरी रोपाई की लागत

पारंपरिक प्रत्यारोपण प्रणाली की तुलना में समग्र रूप से दोहरे प्रतिरोपित प्रणालियों में खेत की तैयारी, अंकुरित पौधों को उखाड़ने और रोपाई के लिए श्रम की अतिरिक्त लागत के कारण चावल उत्पादन की लागत अधिक होगी। लेकिन, दोहरी रोपाई के तहत उत्पादन की उच्च लागत की भरपाई प्रणाली से मिलने वाली उच्च उपज से हो जाती है। इसके अलावा, दोहरी रोपाई प्रणाली में अंतःखेती संचालन की लागत काफी कम है। दोहरी रोपाई और एकल रोपाई द्वारा की गई धान के उत्पादन का अर्थशास्त्र की तुलना तालिका 3 में दी गई है।

तालिका 3. दोहरी रोपाई और एकल रोपाई द्वारा की गई धान उत्पादन का अर्थशास्त्र

विशेषताएं		एकल रोपाई	दोहरी रोपाई
अनाज उपज (क्विंटल/हैक्टर)	1. 2. 3.	22.7 39.5 50.0	41.5 47.1 55.0
खेती की लागत (रुपये/हैक्टर)	1. 2. 3.	26,650 31,445	31,300 38,658
शुद्ध आय (रुपये/हैक्टर)	1. 2. 3.	7,355 15,062 18,400	30,950 32,610 22,500
लाभःलागत अनुपात (रुपये/हैक्टर)		1.27	1.99

लाभ

- इस प्रणाली में वर्षा के मौसम के दौरान विलंबित रोपाई की जा सकती है, जो इसका प्रमुख लाभ है।
- फार्म परिवार मजदूरों के अधिक कुशल उपयोग और रोजगार उत्पन्न करता है।
- रोपाई की तारीख में लचीलेपन के कारण रोपाई के दौरान श्रम की कमी को दूर करता है और उच्च मजदूरी दर की बचत होती है।
- फसल को सूखे और बाढ़ से बचाता है।
- बीज और बीज की लागत की बचत होती है।

- खरपतवार, कीट और रोग की समस्या कम होती है।
- नत्रजन उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है, क्योंकि सुंडा प्रणाली में नत्रजन का अधिक कुशल उपयोग होता है।
- प्रति पूंजा में दौजियों की संख्या अधिक होती है, सभी दौजियों में बालियां निकलती हैं, बालियां वजनदार होते हैं, दाना पूरी तरह से भरा हुआ होता है और इसलिए अधिक उपज मिलती है।
- निचलीभूमि की स्थिति में रोपाई किए गए धान पौधों की गांठों में दौजियां विकसित होती हैं जिससे पौधे गिरते नहीं हैं और उपज हानि कम होती है।

नुकसान

- भूमि की तैयारी और रोपाई के प्रत्यारोपण में अतिरिक्त लागत होती है।
- दोहरी रोपाई की खेती प्रणाली से उत्पादित धान पुआल कठोर होता है और पशुओं द्वारा चारे के रूप में पसंद नहीं किया जाता है।
- दोहरी रोपाई में उखाड़ने और रोपाई हेतु पौधों को अलग करने के लिए अधिक संख्या में श्रम की आवश्यकता होती है।
- यह केवल लंबी अवधि वाले प्रकाशसंवेदनशील धान की किस्मों जैसे मोती, स्वर्णा आदि के लिए उपयुक्त है।
- यह प्रणाली बड़े किसानों के लिए सुविधाजनक नहीं है क्योंकि कई भूखंडों को दो बार प्रत्यारोपित करने की आवश्यकता होती है।

सारांश

बाढ़ प्रभावित धान पारितंत्र में पौधों के डूबने की समस्या से बचाने के लिए दोहरी रोपाई एक उपयुक्त तकनीक है। यह निचलीभूमि के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में उच्च उपज की प्राप्ति हेतु एक आकस्मिक रणनीति है। हाल के वर्षों में हम जलवायु परिवर्तन के कारण पूर्वी भारत में लगातार बाढ़ और सूखा देख रहे हैं जिससे उपज में नुकसान होता है। निचलीभूमि वर्षाश्रित धान पारितंत्र के लिए दोहरी रोपाई एक जलवायु अनुकूल तकनीक है। यद्यपि इस तकनीक में उच्च श्रम की आवश्यकता होती है, लेकिन इस प्रणाली में छोटे क्षेत्र में अंकुरित पौधों के रखरखाव के कारण खरपतवार संक्रमण, कीट और रोग की अपेक्षाकृत कम घटना होती है तथा उर्वरकों, कीटनाशकों और पानी की कम आवश्यकता होती है और इससे उत्पादन लागत कम हो जाता है। दोहरी रोपाई प्रणाली का उपयोग करके धान की खेती से उच्च उत्पादकता के साथ–साथ अधिक शुद्ध लाभ से यह दर्शाता है कि फसल स्थापना की इस पद्धति को अपनाने पर किसानो को वास्तव में लाभ मिला है। लेकिन किसानों के खेत में और अनुसंधान संस्थान के परीक्षण खेत में हाल के अध्ययनों से पता चला है कि दोहरी रोपाई विशेष रूप से निचलीभूमि इलाकों में पारंपरिक तरीकों की अपेक्षा अधिक उपज का लाभ प्रदान करती है। इसलिए, प्रणाली को छोड़ने के बजाय, धान शोधकर्ताओं को प्रणाली के लिए उपयुक्त किस्मों और अन्य फसल प्रबंधन प्रथाओं को विकसित करते हुए प्रणाली को परिष्कृत करने पर काम करना चाहिए।

खाद्य श्रृंखला में सूक्ष्म प्लास्टिक

अरबिंद महांती, श्रीकांत लेंका एवं टोटन अदक

विश्व में जैसे–जैसे प्लास्टिक सामग्रियों की मांग बढ़ती जा रही है, वैसे–वैसे ही प्लास्टिक कचरे का प्रबंधन एक वैश्विक चुनौती बनता जा रहा है। 'माइक्रोप्लास्टिक्स' शब्द का वर्णन व्यापक रूप से 1 नैनोमीटर से लेकर 5 मिलीमीटर तक के आकार वाले प्लास्टिक कणों के उपयोग के लिए किया जाता है। निरंतर वृद्धि होती प्लास्टिक मलबे के बारे में चिंताएं बढ़ रही हैं। हाल ही में एक शोध अध्ययन से पता चला है कि समुद्री और स्थलीय वातावरण में माइक्रोप्लास्टिक्स की उपस्थिति प्रचुर मात्रा में बढ़ी है तथा बढ़ रही है। ये छोटे प्लास्टिक के टुकड़े, जो कि एक छोटी चींटी तथा एक वायरस के आकार के होते हैं, अब पूरे विश्व भर में झीलों और समुद्रों के पानी, मिट्टी में, नदियों के मुहानों तथा यहां तक कि समुद्र में तैरने वाले विभिन्न सूक्ष्म जीवों एवं व्हेल तक के पेट में पाए जा सकते हैं।

सूक्ष्म प्लास्टिक क्या है?

वर्तमान में, माइक्रो अथवा सूक्ष्म प्लास्टिक के दो वर्गीकरण मौजूद हैं। प्राथमिक माइक्रोप्लास्टिक या अतिसूक्ष्म प्लास्टिक वह है जो वातावरण में प्रवेश करने से पहले किसी भी प्लास्टिक या फाइबर के वे टुकड़े होते हैं जो आकार में बहुत ही छोटे अर्थात 5.0 मिमी आकार या उससे कम के कण के होते हैं। इनमें कपड़े के माइक्रोफाइबर (कपड़े में एक बेहद कसी हुई बुनावट) माइक्रोबीड्स और प्लास्टिक गुटिकाएं शामिल हैं। माध्यमिक माइक्रोप्लास्टिक वे सूक्ष्मप्लास्टिक हैं जो प्राकृतिक अपक्षय प्रक्रियाओं के माध्यम से बड़े प्लास्टिक उत्पादों के क्षरण से अति छोटी–छोटी टुकड़ों में बंट जाते हैं और वे पर्यावरण में फैल जाते हैं। माध्यमिक माइक्रोप्लास्टिक्स के स्रोतों में पानी और सोडा की बोतलें, मछली पकड़ने के जाल और प्लास्टिक बैग शामिल हैं। इन दोनों प्रकारों के सूक्ष्मप्लास्टिक खासकर जलीय और समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों में प्रचूर मात्रा में जमा होता जा रहा है।

माइक्रोप्लास्टिक के हानिकारक प्रभाव

प्लास्टिक के कण का आकार जितना छोटा होता है, उतना ही अधिक यह हमारे शरीर में प्रवेश करता है और यह आगे भी प्रवेश कर सकता है। छोटे प्लास्टिक के आकार के आधार पर, वे संभवतः हमारे यकृत नसों द्वारा अवशोषित हो सकते हैं, हमारे अंगों तक पहुंच सकते हैं तथा हमारे रक्त के माध्यम से मस्तिष्क और आंवल तक स्थानांतरित हो सकते हैं। प्लास्टिक, विशेष रूप से सूक्ष्म प्लास्टिक मनुष्यों के साँसों के माध्यम से अंदर जाने पर कण विषाक्तता, रासायनिक विषाक्तता और परजीवी रोगजनकों द्वारा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पैदा करता है। फेफड़े में अतिसूक्ष्म प्लास्टिक सामान्य रूप से हाइड्रोफोबिसिटी, सरफेस चार्ज, सरफेस फंक्शनलाइजेशन, प्रोटीन कोरोना और कण आकार सहित कई कारक से घुसते और निकलते हैं, जो फेफड़ों में चोट का कारण बनते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि 150 माइक्रोमीटर माइक्रोन से बड़े आकार वाले सूक्ष्म प्लास्टिक्स शरीर में शायद अवशोषित नहीं होते हैं जबकि 150 माइक्रोमीटर माइक्रोन से छोटा सूक्ष्म प्लास्टिक, आंत गुहा से लसीका एवं रक्तवह तंत्र में स्थानांतरण हो जाते हैं जिससे शरीर में प्रणालीगत जोखिम उत्पन्न हो सकता है। लेकिन, शरीर में इन माइक्रोप्लास्टिक्स के अवशोषण सीमित होने की उम्मीद है। केवल, 20 माइक्रोमीटर माइक्रोन से अधिक आकार वाले अति सूक्ष्मप्लास्टिक्स अंगों में घुसने में सक्षम हो सकते हैं, जबकि सबसे छोटा प्लास्टिक्स अंश (0.1झ10 माइक्रोन) सभी अंगों, कोशिका झिल्ली, मस्तिष्क और आंवल तक पहुंचने में सक्षम हैं। यदि ऐसा है, तो यह संभव है कि द्वितीयक ऊतकों में यकृत, मांसपेशियों और मस्तिष्क जैसे अंगों में माइक्रोप्लास्टिक्स फैल सकते हैं। इसके अलावा, यह उम्मीद की जा रही है कि प्रतिरक्षा प्रणाली के साथ सूक्ष्म और नैनोप्लास्टिक पारस्परिक क्रिया संभवतः इम्युनोटॉक्सिसिटी का कारण बन सकते हैं और इसके परिणामस्वरूप शरीर में प्रतिकूल प्रभाव (जैसे रोग प्रतिरक्षादमन इम्यूनोसप्रेशन, प्रतिरक्षा सक्रियण और असामान्य दाहक प्रतिक्रिया) आरंभ हो सकता है। एक बार स्तनधारी शरीर के अंदर प्लास्टिक जाने से, प्लास्टिक अपेक्षाकृत स्थिर हो जाते हैं, बहुत धीरे–धीरे इनका अपघटन होता है जैसा कि सर्जिकल आरोपण के लिए प्लास्टिक सामग्री का उपयोग किया जाता है।

सूक्ष्म प्लास्टिक की संभावित विषाक्तता जिनमें से अधिकांश रासायनिक रूप से निष्क्रिय हैं, पर अपेक्षाकृत कम जानकारी उपलब्ध है। किसी भी प्रतिकूल प्रभाव को रासायनिक उपस्थिति के बजाय उनके भौतिक होने के कारण होने की उम्मीद होती है, क्योंकि सहायक रसायनों से विषाक्तता की क्षमता को नगण्य माना जाता है। आमतौर पर अतिसूक्ष्म

प्लास्टिक्स अंतर्जीव प्रतिरोधी होते हैं और तब तक बने रहते हैं जब तक कि उन्हें समाप्त नहीं किया जाता है। यह जठरांत्र पथ के आंत की कोशिकाओं, या मूत्र, पित्त, मस्तिष्कमेरु द्रव, वायुकोशिका, फेफड़े के माध्यम से हो सकता है या स्तनपान कराने वाली महिलाओं के दूध के माध्यम से केंद्रित हो सकता है। फिर भी, अंतर्जीव विषात्तता प्रतिक्रियाएं देखने को मिली हैं। यह पाया गया है कि सीपियों में माइक्रो प्लास्टिक के कण उनकी डीएनए को क्षति करती है।

खाद्य श्रृंखला में सूक्ष्म प्लास्टिक

विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से समुद्री जीवों की एक विस्तृत श्रृंखला अतिसूक्ष्म प्लास्टिक को ग्रहण करती हैं। यह देखा गया है कि मछलियों, सीपियों, भूरे रंग के झींगा आदि में सूक्ष्म प्लास्टिक के कण मौदूद रहते हैं जिसे भोजन के रूप में मनुष्यों द्वारा खपत किए जाते हैं। वैज्ञानिकों ने एक अध्ययन में यह आकलन किया है कि यूरोपीय देशों में शेलफिश की अधिक खपत करने वाले उपभोक्ता प्रति वर्ष 11,000 माइक्रोप्लास्टिक के कणों (आकार सीमा 5–1000 माइक्रोन) तक खाते हैं, जबकि कम शेलफिश खपत वाले देशों में, उपभोक्ता प्रति वर्ष औसतन 1800 माइक्रो प्लास्टिक खाते हैं, जो मनुष्य के स्वास्थ्य के प्रति जोखिम कारक है। उदाहरण के लिए, चीन में सीपियों में माइक्रोप्लास्टिक्स के एक अध्ययन में बताया गया है कि एकल सीपी में 2–11 से 4– 57 के बीच प्रति ग्राम माइक्रोप्लास्टिक्स की औसत संख्या (आकार 5–5000 माइक्रोन) है।

स्थलीय पौधों पर माइक्रोप्लास्टिक्स का प्रभाव

मिट्टी में अतिसूक्ष्म प्लास्टिक सीधे पौधों के बीज के छिद्र को अवरुद्ध करने, जड़ और तना, पत्तियों एवं पानी और पोषक तत्वों के अधिग्रहण को सीमित कर सकता है। सूक्ष्म प्लास्टिक अप्रत्यक्ष रूप से मिट्टी की भौतिक–रासायनिक विशेषताओं, मिट्टी में मौजूद रोगाणुओं और जीवों को प्रभावित करके पौधों को प्रभावित कर सकता है। एक प्रभावित मिट्टी पौध समुदाय की संरचना और संभवतः प्राथमिक उत्पादन स्तर को प्रभावित कर सकती है।

उपसंहार

माइक्रो प्लास्टिक का मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। इसलिए, पर्यावरण के हर क्षेत्र में इसकी सांद्रता को कम करने के लिए उपाय प्रबंधन आवश्यक है। इस संदर्भ में, कुछ संस्तुतिया की गई हैं जो पर्यावरणीय खतरे को कम करने में उपयोगी हो सकती हैं।

- चूंकि भविष्य में माइक्रो प्लास्टिक की सांद्रता बढ़ने की उम्मीद है, इसलिए समुद्री भोजन और अन्य खाद्य पदार्थों में नियमित रूप से माइक्रोप्लास्टिक्स के स्तर का आकलन करना महत्वपूर्ण होगा।
- पर्यावरण के विभिन्न क्षेत्रों में माइक्रोप्लास्टिक्स की मात्रा का मूल्यांकन करने के लिए निरंतर निगरानी कार्यक्रमों की आवश्यकता है और इस प्रकार वैश्विक मछली और शेलफिश भंडार की कमी से बचा जा सकता है।
- रासायनिक और सूक्ष्मजीवविज्ञानी खतरों में योगदान देने वाले कारकों पर अनुसंधान किया जाना चाहिए और मनुष्यों में माइक्रोप्लास्टिक्स के कणों के सेवन से जुड़े जोखिमों और उनके के मूल्यांकन के तरीकों में सुधार पर भी ध्यान देना चाहिए।
- माइक्रोप्लास्टिक से दूषित मछलियों, सीपियों और खाद्य पदार्थों के खपत से होने वाले खतरों और जोखिमों का मूल्यांकन करने के लिए खाद्य सुरक्षा जोखिम विश्लेषण ढांचे को अपनाना आवश्यक है।
- खाद्य श्रृंखला द्वारा मानव शरीर में सम्मिलित हो रहे सूक्ष्म प्लास्टिक के आकार और उनकी गठन की सीमा और मानव शरीर में माइक्रोप्लास्टिक्स की उपस्थिति की पहचान करने में सक्षम तकनीकों के विकास में अध्ययन करने की आवश्यकता है।
- पर्यावरण में सूक्ष्म प्लास्टिक की सांद्रता को कम करने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नीतियों को बनाने की आवश्यकता है।

धान की फसल में आच्छद अंगमारी रोग एवं इसका प्रबंधन

श्रीकांत लेंका, रघु एस., प्रकाश चंद्र रथ एवं अरबिंद महांती

धान का आच्छद अंगमारी रोग राइजोक्टोनिया सोलानी कुह्न नामक कवक के कारण होता है जिससे भारत, एशिया और संयुक्त राज्य अमेरिका के देशों में धान फसल की उपज में बहुत नुकसान होता है। भारत में चावल की आच्छद अंगमारी रोग के कारण उपज नुकसान 11.1–58 प्रतिशत के बीच होती है जो रोग की गंभीरता और किस्मों के आधार पर होती है (चहल एट अल, 2003)। लेकिन गंभीर मामलों में, इस रोग से उपज में 100 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक में चावल की किस्म करुणा की रिपोर्ट (गंगोपाध्याय और चक्रवर्ती, 1982) में इसका उल्लेख है। इस रोग के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका में 50 प्रतिशत तक उपज का नुकसान होता है। जापान में इस रोग से उपज में 20 प्रतिशत तक नुकसान होता है और लगभग 120,000–190,000 हेक्टेयर भूमि प्रभावित होती है। इसमें पौधों के अग्र भाग के पत्तों में यदि संक्रमण होता है, तो 25 प्रतिशत तक की उपज हानि होती है। इस रोग से न केवल पौधे पर घाव उत्पन्न होते हैं बल्कि इससे अंकुरण पूर्व और अंकुरण–पश्चात अंगमारी होता है, धारियों वाली पत्ता अंगमारी, बाली संक्रमण और धब्बेदार बीज भी होते हैं।

आच्छद अंगमारी हेतु अनुकूल परिस्थितियां

उच्च तापमान (28–32 डिग्री सेल्सियस) एवं नत्रजनयुक्त भूमि जहां की सापेक्षिक आद्रता 85–100 प्रतिशत तक रहता है, आच्छद अंगमारी रोग के अनुकूल होता है। धान की फसल आच्छद अंगमारी रोग के प्रति अधिक ग्राह्यशील होती है। उच्च बीज दर, पौध सघनता, पानी में रोगाणुओं होने की उपस्थिति से इस रोग की भयावहता को बढ़ाते हैं।

रोग की पहचान

इस रोग के लक्षण धान के पौधों पर पौध विकास के दौरान अंडाकार या दीर्घवृत्तीय हरे धूसर घाव के रूप में दिखाई देते हैं। पारंपरिक रूप से बाढ़ वाले खेत में पानी या मिट्टी के ऊपरी स्तर से 1–3 सेंटीमीटर लंबी पत्ता आच्छद होते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में, इसके लक्षण पत्तों के ऊपरी भाग तक फैल जाते हैं तथा पत्तियों से फिर विभिन्न पूंजाओं पर (प्रत्यारोपित चावल) या पौधों (सीधी बुआई चावल) तक फैलते हैं। पत्तियों पर घाव आमतौर पर अनियमित होते हैं, अक्सर बीज में धूसर–सफेद और भूरे रंग के किनारों के साथ बड़े होते हैं।

प्रबंधन

धान की फसल में आच्छद अंगमारी रोग को तीन अलग–अलग तरीके से नियंत्रित किया जा सकता है।

1. आच्छद अंगमारी रोग के प्रबंधन के लिए पारंपरिक खेती पद्धतियां

किस्म चयनः रोग के कारण फसल की उपज नुकसान को कम करने की दिशा में धान की सही किस्म का चयन पहला महत्वपूर्ण कदम है। वर्तमान में, चावल की किसी भी किस्मों में आच्छद अंगमारी के विरुद्ध पूर्ण प्रतिरोधिता नहीं है। लेकिन, विभिन्न स्तरों की प्रतिरोधिता वाली चावल की किस्में उपलब्ध हैं। सामान्य तौर पर, लंबे–दानों वाली किस्मों की तुलना में मध्यम–दानों वाली चावल की किस्मों में आच्छद अंगमारी के विरुद्ध अधिक प्रतिरोधिता है। इसलिए, जो चावल की किस्में आच्छद अंगमारी के प्रति कम ग्राह्यशील हैं या मध्यम रूप से प्रतिरोधी हैं, का चयन करना चाहिए जिससे इस रोग से होने वाले नुकसान को कम किया जा सके।

वैकल्पिक संपोषणों को नष्ट करनाः खरपतवारों और अन्य

संपार्श्विक परपोषी पौधों को नष्ट करके रोगाणुओं के स्तर को कम किया जा सकता है। लेकिन, यह उपाय आच्छद अंगमारी के प्रबंधन के लिए बहुत प्रभावी तथा संभव नहीं है।

पत्तियों के घने जाल बनने से रोकने के लिए खेती पद्धतियां: उच्च बुआई की दर और नाइट्रोजन उर्वरक का अत्यधिक उपयोग आमतौर पर फसल विकास को बढ़ाता है तथा जिससे अत्यधिक वनस्पतिग विकास होता है और पत्तियों का घना जाल बनता है जिससे पौधों के पास अनुकूल वातावरण तैयार होता है जो इस रोग के विकास के लिए सहायक है। इसलिए, उच्च बीज की दर और विशेष रूप से नाइट्रोजन उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से बचना चाहिए इससे आच्छद अंगमारी के कारण होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है।

फसल चक्रः निरंतर धान की खेती या कवक के वैकल्पिक पोषकों जैसे सोयाबीन के साथ फसल अनुक्रम से मिट्टी में इनोकुलम बढ़ता है। रोगाणुओं की रोकथाम हेतु खरपतवारों और अन्य संपार्श्विक पोषी पौधों को नष्ट करने, परती अवधियों को घटाने तथा इनोकुलम को कम करने के प्रयास व्यवहार्य प्रबंधन प्रथाएं हैं।

2. रासायनिक नियंत्रण

आच्छद अंगमारी के नियंत्रण के लिए कवकनाशी सबसे प्रभावी उपायों में से एक है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, एजोक्सिस्ट्रोबिन सहित कई कवकनाशी इस रोग का उत्कृष्ट नियंत्रण प्रदान करते हैं। उत्पादन लागत को कम करने और उत्पादन लाभ को अधिकतम करने के लिए वर्तमान में एकल कवकनाशी प्रयोग करने की सिफारिश की जाती है। आच्छद अंगमारी के प्रभावी नियंत्रण के लिए प्रयोग करने का समय महत्वपूर्ण है। धान की फसल की वृद्धि अवस्था के दौरान बालियां तैयार होने पर रोग का समय–समय पर इसकी निगरानी की जानी चाहिए। बालियां बनने के पाँचवें दिन पर कवकनाशी का प्रयोग किया जाना चाहिए। कई स्थितियों में, आच्छद अंगमारी से होने वाले नुकसान को कम करने के लिए पर्णीय कवकनाशक के प्रयोग को आर्थिक रूप से उचित ठहराया जा सकता है, यदि 1) रोग का प्रकोप गंभीर हो, 2) ग्राह्यशील चावल की किस्में के उपयोग की स्थिति, इत्यादि। कवकनाशी प्रयोगों का उद्देश्य आच्छद अंगमारी के फैलाव को रोकने और रोग के कारण अनाज की उपज और गुणवत्ता हानि को कम करना है। यह भी ध्यान रखना होगा कि कवकनाशी का अत्यधिक उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे कवकनाशक प्रतिरोधिता का खतरा बढ़ सकता है।

जैविक नियंत्रण

पौधे के विकास को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया को जैविक नियंत्रण के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। इनका उपयोग पौधों की वृद्धि था मिट्टी में रहने वाले अन्य जीवाणुओं दोनों को नियंत्रण करने के अलावा स्थान और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करने वाले रोगजनक जीवाणुओं के नियंत्रण तथा पौधों की रक्षा तंत्र को सक्रिय करने के लिए उत्तम पाया गया है। अध्ययनों से पता चला है कि रोपाई करने से पहले धान बीज में जीवाणुओं के कुछ उपभेदों को प्रयोग करने पर, राइजोक्टोनिया सोलानी से होने वाले स्केलेरोशिया की अंकुर क्षमता कम हो जाता है, जिससे रोग की प्रकोप कम होता है और उपज बढ़ती है। संभावित प्रतिपक्षी की कुछ प्रजातियां जो जैविक नियंत्रण कारक बन सकती हैं, वे स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस के कुछ उपभेद हैं जो कवक जाली के विकास और स्क्लेरोशिया अंकुरण को होने से रोकते हैं।

उपसंहार

एक एकीकृत प्रबंधन उपाय, प्रतिरोधी या मध्यम प्रतिरोधी किस्में, उपयुक्त पारंपरिक खेती पद्धतियां और पर्णीय कवकनाशी प्रयोग से आच्छद अंगमारी का प्रभावी और आर्थिक नियंत्रण हो सकता है तथा संबंधित उपज हानि को कम किया जा सकता है। किस्म ग्राह्यशीलता, खेत की रोग का इतिहास, रोग की उपस्थिति के समय देखभाल और स्थानीय मौसम की स्थिति जो रोग के पक्ष में है, वे रोग के प्रभावी प्रबंधन हेतु उपयोगी हैं। अनुकूल परिस्थितियों में आच्छद अंगमारी का तीव्र गति से विकसित होता है। बाली निकलने की अवस्था से पूर्ण बाली होने तक नियमित रूप से इस रोग की निगरानी किया जाना चाहिए। बालियों के बनने के बाद आच्छद अंगमारी के संक्रमण के कारण आर्थिक नुकसान ज्यादा हो सकता है।

गुणात्मक चावल एवं उपयोगी सामग्री प्रस्तुतिकरण

पद्मिनी स्वाईं एवं अपराजिता स्वाईं

गुणात्मक चावल कहने से हम यह समझते हैं कि किस धान किस्म के चावल में कौन से विशेष गुण हैं जिसके आधार पर हम उसे एक उत्तम खाद्य सामग्री के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। गुणात्मक चावल के मूल उपादान जैसे बाहय आकृति (बाहरी बनावट) आयतन, बाह्य प्रकार, भेद, इसकी शुद्धता, नमी, धान की कुटाई तथा खाना पकाने के गुण आदि। यद्यपि ऊपरलिखित समस्त गुण विशेष रूप से धान की आनुवांशिक बनावट के ऊपर निर्भरशील है फिर भी पारिपार्श्विक स्थिति तथा खेती करने के तरीके इसको अधिकांश रुप में प्रभावित करता है।

धान हमारे विश्व का सर्वप्राचीन खाद्यशस्यों (अनाजों) में एक है यह हमें 27 प्रतिशत संतुलित आहार तथा 20 प्रतिशत प्रोटीन प्रदान करता है। हाल ही में हुई एक वैज्ञानिक परीक्षण से यह पता चला है कि असम राज्य में संग्रहित कुछ देशी चावल किस्मों में 16 प्रतिशत तक प्रोटीन मौजूद हैं जबकि साधारण चावल में 90 प्रतिशत श्वेतसार, 7 प्रतिशत प्रोटीन और 2 प्रतिशत वसा पाया जाता है।

विभिन्न वैज्ञानिक परीक्षण से यह पता चला है कि पूर्वकालीन धान की किस्म 'हीरा' में 11 प्रतिशत प्रोटीन, 5 पीपीएम लौह, 23 पीपीएम जस्ता मौजूद है। इसके चिड़वा में भी 10 प्रतिशत प्रोटीन है। इसलिए हीरा धान की किस्म के अधिक प्रयोग से गरीब किसान के परिवार के लिए प्रोटीन की आवश्यकता की आपूर्ति हो सकेगी। लौह एवं जस्ता दोनों सुंदर अेर स्वास्थ्य शरीर हेतु अत्यंत आवश्यक है।

वैज्ञानिकों ने कहा है कि मधुमेह के मरीज प्रतिदिन अपने खाद्य में स्वर्णा, महसूरी और ललाट आदि चावल की किस्में शामिल कर सकते हैं। ओडिशा के किसानों ने ललाट और स्वर्णा धान की किस्मों को विशेष रूप से अपनाया है जो बाजार में कम मूल्य में उपलब्ध है। हाल ही में असम राज्य से संग्रहित एक देशी धान किस्म श्नवीनश को सफलतापूर्वक मिलाया गया है। इसके अधिक प्रसार से जन समुदाय लाभान्वित हो पाएगा।

यद्यपि फसल की कटाई के बाद चावल आधारित खाद्य सामग्री प्रस्तुति में काफी उन्नति हुई है फिर भी कई मूल्ययुक्त सामग्री प्रस्तुति तथा इसके व्यावसायीकरण के लिए अनेक अवसर भी उपलब्ध हैं जिससे उत्तम पोषण, सही व्यापार एवं किसानों को अधिक लाभ मिल सकेगा।

प्राचीन काल से ही विभिन्न तीज–त्योहारों में हम विभिन्न प्रकार के पकवान प्रस्तुत करते आए हैं। इन सबके लिए हम अलग–अलग किस्मों के चावल उपयोग करते हैं। चावल की किस्म के अनुसार उसमें अलग–अलग खाद्य सामग्री तथा पकवान प्रस्तुत करने का गुण रहता है जैसे मुरमुरे के लिए 'पानीधान', 'पद्मिनी', 'गंगशिउली', 'ललाट', 'बोइतालपखिआ' आदि। खई के लिए 'मयूरकंठ', 'एसआर–26बी', 'कलापाखिआ' आदि, चिड़वा के लिए 'गायत्री', 'सावित्री', इडली–दोसा के लिए 'सावित्री' जो कि तमिल नाडु में 'पनमोनि' के नाम से प्रसिद्ध है। इडली–दोसा के लिए 'बासमती', 'गीतांजलि', 'पूसासुगंध–2' आदि किस्में, खीर बनाने के लिए सुगंधित चावल की किस्में जैसे श्कालाजीराश, श्पद्मिनीश, श्मुगनेईश, श्कालानमकश, श्बिंदलीश आदि तथा पीठा के लिए विभिन्न किस्मों के चावल प्रयोग किए जाते हैं। शिशु आहार, विभिन्न प्रकार के अनाजों से बना मिश्रित सत्तू, चावल पाउडर आदि सहज रूप में आजकल बाजार में उपलब्ध हो रहे हैं। फिर भी लोगों की आवश्यकता को देखकर अगर मूल्ययुक्त सामग्रियों की सरकारी और घरेलू संस्था द्वारा देश–विदेशों में प्रचार–प्रसार हो, तो न केवल हमारी संस्कृति का प्रचार–प्रसार होगा बल्कि हमारे ग्रामीण महिलाओं को रोजगार, खाद्य सुरक्षा तथा जीवन निर्वाह के तरीके, पोषणता तथा मितव्ययता को भी सुदृढ़ किया जा सकता है।

इतिहास ने, भूगोल ने, परंपरा ने, संस्कृति ने, धर्म ने,
नदियों ने हमें आपस में बांधा है।

भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी

धान में भारी धातु विषाक्तता और इसके जैविक उपचार

सागर बनर्जी, एम. जे. बेग

परिचय

भारी धातुओं को पारंपरिक रूप से धातु के गुणों और 20 से अधिक परमाणु संख्या वाले तत्वों के रूप में परिभाषित किया गया है। भारी धातु पर्यावरण में दूषित पदार्थों में से हैं। सबसे प्रमुख भारी धातु संदूषण कैडमियम, क्रोमियम, तांबा, पारा, सीसा और जस्ता हैं। मिट्टी में धातु प्राकृतिक घटक हैं। इनमें से कुछ धातु धान की वृद्धि के लिए आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व हैं, जैसे कि जस्ता, तांबा, मैंगनीज, निकेल और कोबाल्ट, जबकि अन्य के जैविक कार्य अज्ञात हैं, जैसे कैडमियम, पारा और सीसा। प्राकृतिक गतिविधियों के अलावा, लगभग सभी मानवीय कार्यकलापों का भी भारी धातुओं का उत्पादन करने के लिए संभावित योगदान है। मिट्टी के माध्यम से धूल या रिसाव के रूप में गैर–दूषित क्षेत्रों में इन संदूषकों का प्रवासन और सीवेज कीचड़ युक्त भारी धातुओं का प्रसार पारिस्थितिकी तंत्र के संदूषण की दिशा में योगदान करने वाली घटनाओं के कुछ उदाहरण हैं।

जैविक प्रणालियों पर धातु प्रदूषण का हानिकारक प्रभाव पड़ता है और यह जैव निम्नीकरण से नहीं गुजरता है। जहरीली धातुओं जैसे कोबाल्ट, सीसा, कैडमियम को अन्य प्रदूषकों से विभेदित किया जा सकता है, क्योंकि वे बायोडिग्रेड नहीं किये जा सकते हैं, लेकिन जीवों में जमा हो सकते हैं, इस प्रकार अपेक्षाकृत कम सांद्रता में भी विभिन्न बीमारियों और विकारों का कारण बन सकते हैं। हजारों सालों से मिट्टी में रहते हुए समय के साथ भारी धातु, उच्च जीवों के लिए कई खतरे पैदा करते हैं। उन्हें पौधों की वृद्धि, जमीन के आवरण पर प्रभाव और मिट्टी के माइक्रोफ्लोरा पर नकारात्मक प्रभाव डालने के लिए भी जाना जाता है। यह सर्वविदित है कि भारी धातुओं का रासायनिक रूप से क्षरण नहीं किया जा सकता है और इन्हें भौतिक रूप से हटाने या नॉनटॉक्सिक यौगिकों में बदलने की आवश्यकता है।

विश्व के कई भागों में कृषि मिट्टी हल्की धातु विषाक्तता जैसे कि कैडमियम, तांबा, जस्ता, निकेल और कोबाल्ट द्वारा दूषित होती है। यह फॉस्फेटिक उर्वरकों के लंबे समय तक उपयोग, सीवेज कीचड़ के अनुप्रयोग, स्मेल्टरों से धूल, औद्योगिक कचरे और कृषि भूमि में खराब पानी के उपयोग के कारण हो सकता है। धातु स्वतंत्र रूप से या अन्य मिट्टी घटकों के साथ संयोजन के रूप में मौजूद हो सकते हैं। पौधों (धान) की प्राथमिक प्रतिक्रिया भारी धातुओं के उच्च स्तर के संपर्क में प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (आरओएस) की पीढ़ी है। विभिन्न धातु या तो सीधे हेबर–वीस प्रतिक्रियाओं के माध्यम से आरओएस उत्पन्न करती हैं या आरओएस का अतिप्रवाह और पौधों में ऑक्सीडेटिव तनाव की घटना भारी धातु विषाक्तता का अप्रत्यक्ष परिणाम हो सकती है। अप्रत्यक्ष तंत्र में एंटीऑक्सिडेंट प्रणाली के साथ उनकी परस्पर क्रिया, इलेक्ट्रॉन परिवहन श्रृंखला को बाधित करना या आवश्यक तत्वों के चयापचय में गड़बड़ी शामिल है। धान में भारी धातुओं के संपर्क से प्रेरित सबसे घातक प्रभावों में से एक लिपिड पेरोक्सीडेशन है, जो सीधे बायोमेम्ब्रेन खराब होने का कारण बन सकता है। मालोंडियल्डीहाइड (एमडीए), झिल्ली के पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड के अपघटन उत्पादों में से एक को ऑक्सीडेटिव तनाव का एक विश्वसनीय संकेतक माना जाता है। हालांकि, पौधों ने ऐसी प्रतिकूल पर्यावरणीय भारी धातु विषाक्तता समस्याओं से निपटने के लिए एक बहुत ही कुशल तंत्र विकसित की है। पौधे कम आणविक भार वाले थेओल्स का उत्पादन करते हैं जो विषाक्त धातुओं के लिए उच्च संबंध दिखाते हैं।

धान के पौधों की वृद्धि एवं मानव स्वास्थ्य पर भारी धातु प्रदूषित मिट्टी का प्रभाव

धान के पौधों के द्वारा लिए जाने के लिए जो भारी धातुएँ उपलब्ध हैं, वे मिट्टी के घोल में घुलनशील घटकों के रूप में मौजूद होती हैं या जो जड़ो के एक्सुडेटस में घुलनशील होती है। यद्यपि धान के पौधों को अपने विकास और रखरखाव के लिए कुछ भारी धातुओं की आवश्यकता होती है, लेकिन इन धातुओं की अत्यधिक मात्रा पौधों के लिए विषाक्त हो सकती है। पौधों की आवश्यक धातुओं को समान रूप से संचित करने की क्षमता उन्हें अन्य गैर–उपयुक्त धातुओं का अधिग्रहण करने में सक्षम बनाती है। धातुओं को तोड़ा नहीं जा सकता, इसलिए जब पौधे के भीतर सांद्रता इष्टतम स्तर से अधिक हो जाती है, तो वे पौधे को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दोनों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं।

उच्च धातु सांद्रता के कारण होन`वाले कुछ प्रत्यक्ष जहरीले प्रभाव में कोशिका–द्रव्य एंजाइमों का अवरोध और

ऑक्सीडेटिव तनाव के कारण कोशिका संरचनाओं को नुकसान शामिल है। अप्रत्यक्ष जहरीले प्रभाव का एक उदाहरण आवश्यक पोषक तत्वों का प्रतिस्थापन है। इसके अलावा, भारी धातुओं के नकारात्मक प्रभाव से मिट्टी के सूक्ष्मजीवों की वृद्धि और गतिविधियां भी अप्रत्यक्ष रूप से पौधों की वृद्धि को प्रभावित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, उच्च धातु सांद्रता के कारण ी मिट्टी के लाभकार सूक्ष्मजीवों की संख्या में कमी से कार्बनिक पदार्थों के अपघटन में कमी हो सकती है, जिससे मिट्टी के पोषक तत्वों में गिरावट आ सकती है। मिट्टी के सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों के साथ भारी धातु के हस्तक्षेप के कारण पौधे के चयापचय के लिए उपयोगी एंजाइम की गतिविधियां भी बाधित हो सकती हैं। ये विषाक्त प्रभाव (प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों) पौधे की वृद्धि में गिरावट का कारण बनते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कभी–कभी पौधे नष्ट हो जाते हैं।

पौधों की वृद्धि पर भारी धातु विषाक्तता का प्रभाव प्रक्रिया में शामिल विशेष भारी धातु के अनुसार भिन्न होता है। सीसा, पारा, कैडमियम जैसी धातुओं के लिए और जो पौधे की वृद्धि में कोई लाभकारी भूमिका नहीं निभाते हैं, प्रतिकूल प्रभाव इन धातुओं के विकास के माध्यम में बहुत कम सांद्रता में दर्ज किए गए हैं। प्रदूषित मृदाओं पर उगने वाले पौधों के विकास के मापदंडों में अधिकांश कमी प्रकाश संश्लेषक गतिविधियों, पौधों के पोषण और कुछ एंजाइमों की कम गतिविधि के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

अन्य धातुओं के लिए जो पौधों के लिए फायदेमंद हैं, मिट्टी में इन धातुओं की "छोटी" सांद्रता वास्तव में पौधे के विकास और विकास में सुधार कर सकती हैं। हालांकि, इन धातुओं की उच्च सांद्रता में, पौधों की वृद्धि में कमी दर्ज की गई है। यह उल्लेखनीय है कि, अधिकांश वास्तविक जीवन स्थितियों में (जैसे सीवेज कीचड़ और धातु खनन कचरे का निपटान) जहां मिट्टी एक से अधिक भारी धातु के साथ प्रदूषित हो सकती है, भारी धातुओं के बीच विरोधी और सहक्रियात्मक संबंध दोनों धातु के विषाक्तता को प्रभावित कर सकते हैं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कुछ पौधे अपने वातावरण में भारी धातुओं की उच्च सांद्रता को सहन करने में सक्षम हैं।

पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव के अलावा, भारी धातुएं प्रकृति में उनकी दृढ़ता के कारण मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा करती हैं। उदाहरण के लिए, सीसा सबसे जहरीली भारी धातुओं में से एक है, जिसकी मिट्टी प्रतिधारण समय 150–500 साल है और यह 150 वर्षों तक उच्च सांद्रता बनाए रखने में सक्षम है। भारी धातु–दूषित साइटों में बढ़ने वाले पौधे आमतौर पर भारी मात्रा में भारी धातुओं को जमा करते हैं, और इस प्रकार, खाद्य श्रृंखला का संदूषण होता है। दूषित खाद्य श्रृंखला जानवरों और मानव ऊतकों में भारी धातुओं के प्रवेश के लिए एक प्राथमिक मार्ग के रूप में कार्य करती है, जिससे उन्हें कई बीमारियों का खतरा होता है जो डर्मेटाइटिस से लेकर विभिन्न प्रकार के कैंसर तक होते हैं। अगर सही समय पर पर्याप्त उपाय नहीं किए गए तो यह समस्या और भी बदतर हो सकती है। इसलिए, इस क्षेत्र में अनुसंधान फसल पौधों में भारी धातुओं के प्रवेश को कम करने की उम्मीद से प्रेरित है, जिससे जानवरों और मनुष्यों में संदूषण का खतरा कम हो सकता है।

भारी धातु प्रदूषित मिट्टी का जैविक उपचार

सूक्ष्मजीवों द्वारा दूषित भूमि का सुधार (बायोरेमेडिएशन) किया जाता है। यह मृदा बचाव का एक व्यापक रूप से स्वीकृत तरीका है क्योंकि यह प्राकृतिक प्रक्रियाओं के माध्यम से होता है। यह समान रूप से मृदा उपचार का एक प्रभावी तरीका है। यह आमतौर पर समय लेने वाली और भारी धातु प्रदूषित मिट्टी के उपचार के लिए इसका उपयोग कभी–कभी क्षेत्र की जलवायु और भूवैज्ञानिक स्थितियों से भी प्रभावित होता है। बायोरेमेडिएशन के दौरान भारी धातुओं का विघटन नहीं किया जा सकता है, लेकिन एक कार्बनिक मिश्रण या ऑक्सीकरण अवस्था से दूसरे में परिवर्तित किया जा सकता है। उनके ऑक्सीकरण की स्थिति में बदलाव के कारण, भारी धातुओं को या तो कम विषाक्त, आसानी से वाष्पशील, अधिक पानी में घुलनशील (और इस तरह लीचिंग के माध्यम से हटाया जा सकता है) में परिवर्तित किया जा सकता है। सूक्ष्मजीवों, पौधों या दोनों जीवों के संयोजन के माध्यम से भारी धातुओं का बायोरेमेडिएशन प्राप्त किया जा सकता है। कई सूक्ष्मजीवों विशेष रूप से बैक्टीरिया (Bacillus subtilis, Pseudomonas putida और Enterobacter cloacae) को क्रोमियम (VI) से कम विषाक्त क्रोमियम (III) में परिवर्तित करने के लिए सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है। जैविक उपचार अप्रत्यक्ष रूप से सल्फेट का अपचयन करने वाले करके बैक्टीरिया (Desulfovibrio desulfuricans) द्वारा बायो प्रेसिपीटशन के माध्यम से हो सकता है जो सल्फेट को हाइड्रोजन सल्फेट में परिवर्तित करता है जो बाद में Cd और Zn जैसे भारी धातुओं के साथ प्रतिक्रिया करके इन धातुओं के सल्फाइड के अघुलनशील रूप बनाता है। मिट्टी को मिट्टी के सूक्ष्म जीवों के लिए अनुकूल बनाना प्रदूषित मिट्टी के

बायोरेमेडिएशन में नियोजित एक रणनीति है। बायोस्टिम्यूलेशन के रूप में जानी जाने वाली इस प्रक्रिया में खाद या अन्य कार्बनिक संशोधनों के रूप में पोषक तत्वों का समावेश होता है जो मिट्टी में मौजूद सूक्ष्मजीवों के लिए कार्बन स्रोत के रूप में काम करते हैं। अतिरिक्त पोषक तत्व उपचारात्मक प्रक्रिया में शामिल सूक्ष्मजीवों की वृद्धि और गतिविधियों को बढ़ाते हैं और इस प्रकार इससे बायोरेमेडिएशन की दक्षता बढ़ जाती है।

फाइटोरेमेडिएशन

फाइटोरेमेडिएशन, जैविक उपचार का ही एक पहलू है जो प्रदूषित मिट्टी के उपचार के लिए पौधों का उपयोग करता है। यह तरीका सबसे उपयुक्त तब होता है जब प्रदूषक एक विस्तृत क्षेत्र को कवर करते हैं और जब वे पौधे के जड़ क्षेत्र के भीतर होते हैं । भारी धातु प्रदूषित मिट्टी के फाइटोरेमेडिएशन को विभिन्न तंत्रों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। इन तंत्रों में फाइटोएक्स्ट्रेक्शन, फाइटोस्टैबिलाइजेशन, और फाइटोवोलैटाइजेशन शामिल हैं।

फाइटोएक्स्ट्रेक्शन

यह फाइटोरेमेडिएशन का सबसे सामान्य रूप है। इसमें फाइटोरेमेडिएशन पौधों की जड़ों और अंकुर में भारी धातुओं का संचय शामिल है। बाद में इन पौधों को काटा और उगाया जाता है। फाइटोक्स्ट्रेक्शन के लिए उपयोग किए जाने वाले पौधों में आमतौर पर निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं: तेजी से विकास दर, उच्च बायोमास, व्यापक जड़ प्रणाली, और भारी धातुओं की उच्च मात्रा को सहन करने की क्षमता। इन पौधों द्वारा भारी धातुओं की उच्च सांद्रता को सहन करने की क्षमता से फसल योग्य भाग में धातु का संचय हो सकता हैय यह खाद्य श्रृंखला के संदूषण के माध्यम से समस्याग्रस्त हो सकता है। प्रक्रिया में शामिल पौधों की विशेषताओं के आधार पर फाइटोक्स्ट्रेक्शन के दो तरीके हैं। पहले तरीके में प्राकृतिक उच्च संचालक का उपयोग शामिल है, अर्थात बहुत उच्च धातु–संचय क्षमता वाले पौधे, जबकि दूसरे तरीके में उच्च बायोमास पौधों का उपयोग शामिल है जिनकी धातुओं को जमा करने की क्षमता चीलेट्स के द्वारा प्रेरित होती है।

फाइटोस्टैबिलाइजेशन

फाइटोस्टैबिलाइजेशन में पौधों को धातुओं के स्थिरीकरण के लिए उपयोग किया जाता है। यह ज्यादातर तब उपयोग किया जाता है जब फाइटोएक्स्ट्रेक्शन वांछनीय या संभव भी नहीं होता है। मिट्टी के बहुत अधिकम मात्रा में प्रदूषित होने पर इस तकनीक का उपयोग किया जाता है। फाइटोस्टैबिलाइजेशन की दक्षता पौधों और मिट्टी के संशोधन पर निर्भर करती है। पौधे अपनी जड़ प्रणालियों के माध्यम से मिट्टी को स्थिर करने में मदद करते हैं, इस प्रकार, वे क्षरण को रोकते हैं। पौधों की जड़ प्रणाली समान रूप से मिट्टी के माध्यम से पानी के कटाव को कम करके रिसाव को रोकती है। इसके अलावा, पौधे प्रदूषकों के साथ मनुष्य के सीधे संपर्क को रोकते हैं और वे समान रूप से धातु के वर्षण और सोखने के लिए सतह प्रदान करते हैं। फाइटोस्टैबिलाइजेशन के लिए उपयोग किए जाने वाले पौधों में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए: घनी जड़ें प्रणाली, मिट्टी की स्थिति को सहन करने की क्षमता, क्षेत्र की परिस्थितियों में स्थापना और रखरखाव में आसानी, पर्याप्त जमीनी कवरेज प्रदान करने के लिए तेजी से विकास और दीर्घायु की क्षमता।

फाइटोवोलैटाइजेशन

फाइटोएरेमेडिएशन के इस रूप में, पौधों को मिट्टी से प्रदूषक सोखने के लिए उपयोग किया जाता हैय ये प्रदूषक अस्थिर रूपों में बदल जाते हैं और बाद में वायुमंडल में स्थानांतरित हो जाते हैं। फाइटोवोलैटाइजेशन ज्यादातर Hg के साथ प्रदूषित मिट्टी के बचाव के लिए उपयोग किया जाता है। पारा (मरक्यूरिक आयन) का विषाक्त रूप कम विषाक्त रूप (तात्विक Hg) में बदल जाता है। इस प्रक्रिया के साथ समस्या यह है कि नया उत्पाद, जो कि प्राथमिक पारा है, को वर्षा द्वारा पुनर्नवीनीकरण किए जाने के बाद झीलों और नदियों में पुनर्वितरित किया जा सकता है, यह बदले में अवायवीय जीवाणुओं द्वारा मिथाइल–पारा उत्पादन की प्रक्रिया को दोहराता है।

निष्कर्ष

भारी धातु प्रदूषित मिट्टी पर उगने वाले पौधे अपने शारीरिक और जैव रासायनिक गतिविधियों में परिवर्तन के कारण वृद्धि में कमी दिखाते हैं। यह विशेष रूप से सच है कि शामिल भारी धातु धान के पौधों की वृद्धि और विकास के लिए कोई लाभकारी भूमिका नहीं निभाते हैं। भारी धातु प्रदूषित मिट्टी के उपचार के लिए बायोरेमेडिएशन का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है। यह सबसे उपयुक्त है जब संदर्भित स्थल का उपयोग फसल उत्पादन के लिए किया जाता है। सूक्ष्मजीवों के उपयोग की तुलना में फाइटोरेमेडिएशन के लिए

पौधों का उपयोग करना भारी धातु के बायोरेमेडिएशन के लिए एक अधिक उपयुक्त दृष्टिकोण है। पौधे भारी धातु प्रदूषित मिट्टी के शोधन में विभिन्न तंत्रों को नियोजित करते हैं। फाइटोएक्स्ट्रेक्शन, फाइटोरेमेडिएशन की सबसे आम विधि है जिसका उपयोग भारी धातु प्रदूषित मिट्टी के उपचार के लिए किया जाता है। यह प्रदूषक के पूर्ण निष्कासन को सुनिश्चित करता है। जैविक उपचार में दोनों पौधों और सूक्ष्मजीवों के संयोजन से उपचार की इस विधि की दक्षता बढ़ जाती है। इन जीवों के संयुक्त उपयोग की सफलता इसमें शामिल सूक्ष्म जीवों और पौधों की प्रजातियों और मिट्टी में भारी धातु की सांद्रता पर कुछ हद तक निर्भर करती है।

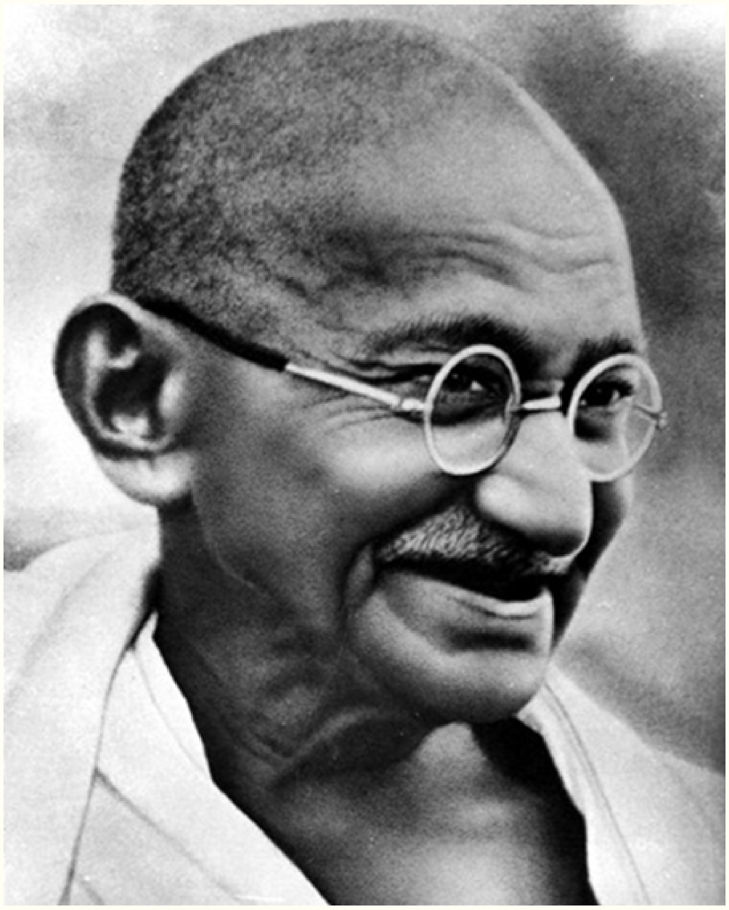

विश्व के सभी धर्म, भले ही और चीजों में अंतर रखते हों, लेकिन सभी इस बात पर एकमत हैं कि दुनिया में कुछ नहीं बस सत्य जीवित रहता है...

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

धान के खेत में छोटी मछलियों का महत्व और उसके फायदे

एनी पूनम, बी.एस. शतपथी, एस.के. लेंका एवं पी.के. साहु

धान के खेतों में धान सहित मछली पालन की प्रथा बहुत पुराने समय से प्रचलित है। छोटी मछलियाँ जो सिंचाई या जमा हुआ पानी में या आस–पास की तालाबों, छोटे जलाश्रयों में स्वाभाविक रूप से होती हैं, धान के खेतों में प्रवेश करती हैं और धान के साथ–साथ धान फसल की कटाई तक वहाँ बढ़ते हैं। इस प्रकार धान के खेतों में मछली उत्पादन बहुत पुराने समय से होता रहा है, जो पालन के बजाय पकड़ने पर आधारित था। भूमि के एक ही टुकड़े पर धान की फसल से अनाज एवं मछली पालन से पशु प्रोटीन प्राप्त करना "समकालीन उत्पादन" का सबसे अच्छा साधन है और भूमि उपयोग के सबसे आदर्श तरीकों में से एक है। मीठे जल में मछलीपालन द्वारा मछली उत्पादन बढ़ाने के प्रयासों ने मुख्य रूप से कार्प उत्पादन बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया गया है, जबकि भारत में मीठे पानी की मछली का एक बहुत बड़ा जीन पूल है और यह वास्तव में उपेक्षित है। कार्प प्रजातियों के साथ पॉलीकल्चर प्रणालियों में कुछ छोटे देशी प्रजातियों के एकीकरण से समग्र रूप में तालाब मछलीपालन के उत्पादन में वृद्धि हुई है।

छोटी देसी मछली की प्रजातियां अन्य मछलियों के साथ अच्छी तरह से बढ़ती हैं और अक्सर प्रजनन करती हैं और जिसे कुछ समय के अंतराल पर आंशिक रूप से मछलियों को निकाला जा सकता है, जिससे घरेलू खपत के लिए मछली की निरंतर आपूर्ति होने के साथ–साथ मिट्टी की उत्पादकता बढ़ती है तथा मछली की स्थानीय उपलब्धता भी बढ़ती है।

इन छोटी देशी प्रजातियों से कार्प के बराबर उत्पादन मिल सकते हैं। कम लागत वाली मछलीपालन जिसमें स्थानीय रूप से महत्वपूर्ण छोटी मछलियाँ शामिल हैं, को बढ़ावा दिया जा सकता है। तटीय ओडिशा, पश्चिम बंगाल और असम जैसे राज्यों में इस तरह की मछलीपालन को प्रोत्साहित किया जा सकता है जहाँ लगभग हर ग्रामीण घर, विशेष रूप से बाढ़ वाले क्षेत्रों में लगभग 0.05 हेक्टेयर क्षेत्र के एक छोटा–सा जलाश्रय में, बाटा, रेबा बेले मोरला, पुति, कोइ, पाबदा और मोला जैसी प्रजातियों तथा बाटा और रेबा के लिए 150–200 प्रति हेक्टेयर और मोल के लिए 100–200 प्रति हैक्टर की दर से मछलीपालन की जा सकती है। वर्तमान देश के निचलीभूमि परती जल संसाधनों का जिनका उपयोग नहीं हो पा रहा है, यदि उनमें मछलीपालन हेतु स्थानीय महत्वपूर्ण छोटी मछलियों की खेती की जाती है, तो देश की खाद्य सुरक्षा को बढ़ाया जा सकता है।

इस तरह की प्रणालियों में मध्यम कार्प (अर्थात् बाटा और रेबा) को शामिल करके, दोहरे खेती पद्धति द्वारा कम जोखिम वाले कारकों के साथ अधिक आय मिल सकता है। जरूरत–आधारित खेती प्रणालियों के तहत उन्हें अपनाने से विशेकर ग्रामीण महिलाओं के लिए खाद्य सुरक्षा और रोजगार में वृद्धि हो सकती है और इससे उनकी सामाजिक आर्थिक उत्थान भी होगी।

यद्यपि छोटी मछलियों को पालने में फायदे हैं – जैसे कि कृषक परिवार के लिए अधिक आर्थिक लाभ और पर्यावरण पर कम नकारात्मक प्रभाव। कई छोटी देशी प्रजातियों को पहले से ही विकसित की गई हैं और विभिन्न स्थानों पर सफलतापूर्वक पाले जा रहे हैं। इनमें पाबदा (ओमपक पाबड़ाढ्वए नदोश (नंदूस नंदूस), टांग्रा (माइस्टस गुलियो) चेला (चेला बाकैला), सरपुंति (पुंटियस सरना), मौरलाध्मोला (एंबिलीफारिनगाडोन मोला), चंदा (चंदा नामा एवं चंदा रंगा), कोइ (एनाबस टेस्टुडिनियस), मागुर (क्लेरिअस बैट्राखस) एवं सिंघी (हेटेरोप्नेस्टेस फोसिलीस) शामिल हैं।

यद्यपि छोटी स्वदेशी प्रजातियां महत्वपूर्ण हैं, उन्हें बड़े पैमाने पर अनदेखा किया गया है। मीठे पानी में मछली उत्पादन बढ़ाने के प्रयासों ने मुख्य रूप से कार्प उत्पादन बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया है, इस तथ्य के बावजूद कि भारत में मीठे पानी की मछली का एक बहुत मजबूत जीन पूल है, जो वास्तव में उपेक्षित है।

छोटी मछलियों में पोषण मूल्य

सामान्य तौर पर, विकसित देशों में रहने वाले लोगों की तुलना में विकासशील देशों के लोग मछली पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं। मछली उत्कृष्ट पोषण मूल्य का खाद्य है, इससे उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन, विटामिन ए और डी, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम, सेलेनियम तथा आयोडीन सहित विभिन्न प्रकार के विटामिन और खनिज मिलता है। मछली की प्रोटीन – मांस की तरह आसानी से पचने योग्य और अनुकूल रूप से आहार प्रोटीन है जो अनाज और फलिदार फसलों से मिलता है एवं जिसे देश के कई भागों में आमतौर पर खाया जाता है। विशेषज्ञों का मानना है कि कम मात्रा में मछली खाने से भी

उसमें मौजूद आवश्यक अमीनो एसिड पूरक आहार के रूप में गुणवत्ता वाली प्रोटीन मिलती है जो साधारणतः सब्जी–आधारित आहार में कम मात्रा में मौजूद होते हैं। लेकिन हाल में किया गया शोध से पता चलता है कि मछली की प्रोटीन एक वैकल्पिक स्रोत से कहीं अधिक है। वसायुक्त मछली का तेल एक प्रकार का वसा है जो अजन्मे शिशुओं और कम आयु के शिशुओं के मस्तिष्क के सामान्य विकास के लिए महत्वपूर्ण एवं समृद्ध वसा है। इन फैटी एसिड की पर्याप्त मात्रा के बिना मस्तिष्क का सामान्य विकास नहीं हो पाता है।

प्रोटीन के स्रोत के रूप में मछली पर ध्यान केंद्रित करने यह पता चलता है कि यह सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे कैल्शियम, जस्ता और विटामिन ए का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। कंबोडिया में मछली की 16 किस्मों पर किए गए अध्ययनों से पता चला है कि अधिकांश देशी किस्मों की मछलियों में लौह तत्व की मात्रा बहुत अधिक होती है, जो कि अत्यधिक जैवउपलब्ध भी हैं। कैल्शियम बच्चों के लिए और गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। सभी छोटी मछलियां कैल्शियम के अच्छी स्रोत होती हैं लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि उन्हें पूरी (हड्डियों के साथ) तरह से खाई जाएं। कैल्शियम बड़ी मछलियों में भी उपलब्ध है, लेकिन छोटी मछलियों की तरह इनकी जैव उपलब्धता उतनी अधिक नहीं है। छोटी मछली भी पोटेशियम का एक समृद्ध स्रोत है। पोटेशियम की उच्चतम सांद्रता छोटी मछलियों जैसे मोला, मुरल (मुरल), कैटफिश (पाबड़ा) और क्लाइमबिंग पर्च (कोय) में पाई जाती हैं।

लाभ

1. मछली मल और कृत्रिम मछली खाद्य के अवशेषों द्वारा जैविक निषेचन में वृद्धि।
2. मछलियों के हलचल के कारण धान के पौधों में बेहतर दौजियां।
3. धान का तना छेदक हानिकारक कीटों की संख्या में कमी, जिनके लार्वा मछलियों द्वारा खाए जाते हैं।
4. जल स्तर में वृद्धि के कारण चूहों की संख्या में कमी।
5. पानी के नीचे रहने वाले जीवों द्वारा मिट्टी को कीचड़दार बनाने परिणामस्वरूप जैविक पदार्थों में खनिजकरण की वृद्धि और मिट्टी में वातन की वृद्धि।
6. शैवाल और खरपतवारों का नियंत्रण (फाइटोफैगन्स मछली द्वारा) जो प्रकाश और पोषक तत्वों के लिए धान पौधों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं।

जैव उर्वरकों का कार्बनिक खेती में योगदान

हरिनारायण, उपेंद्रकुमार, तापस चौधरी, सुमंत वेलुदंडी और एस एच मजूमदार

जैव उर्वरक एक प्रकार के जीव होते हैं जो मृदा की पोषण गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। ये जीवाणु, कवक तथा सायनोबैक्टीरिया के मुख्य स्रोत होते हैं। द्विबीजपत्री (लैग्यूमिनस) पादपों की जड़ों पर स्थित ग्रंथियों का निर्माण राइजोबियम के सहजीवी सम्बन्ध द्वारा होता है। यह सूक्ष्मजीव वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकृत कर इसे कार्बनिक रूप में परिवर्तित कर देते हैं जिससे पादप इसका प्रयोग पोषकों के रूप में करते हैं।

खेती में रासायनिक उर्वरकों के बहुतायत प्रयोग से विभिन्न परेशानिया जुड़ी हुई हैं। इसके परिणामस्वरूप जैविक खेती करने पर तथा जैवउर्वरकों के प्रयोग पर जोर दिया जा रहा है। हाल ही में, भारत में जैवउर्वरकों की एक बड़ी संख्या बड़े पैमाने पर बाजार में उपलब्ध होने लगी है। किसान अपनी खेतों में लगातार इनका प्रयोग कर रहे हैं। इससे मृदा पोषकतत्वों की भरपाई तथा रसायन उर्वरकों पर निर्भरता भी कम हो रही है। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उपज में बढ़वार तो होती है, परन्तुअधिक प्रयोग से मृदा की उर्वरता तथा संरचना पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, इसलिये रासायनिक उर्वरकों के साथ जैवउर्वरकों के प्रयोग की सम्भावनाएँ बढ़ रही हैं। जैवउर्वरकों के प्रयोग से फसल को पोषकतत्वों की आपूर्ति होने के साथ मृदा जिससे उपज में वृद्धि होती है।

एक लम्बे समय से इस बात की जानकारी लोगों को थी कि दलहन मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाती है। लेकिन इस बात का वैज्ञानिक प्रदर्शन 19वीं शताब्दी के आधा गुजर जाने के बाद ही पता हो पाया था। दहलन कुल के पौधों की जड़ों में ही नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिये गाँठे बनती हैं। दलहन कुल को तीन उपकुलों–मिमोसिडी, सिजलपिनिडी व पैपलिओनिडी में विभाजित किया गया है। मिमोसिडी के 90 प्रतिशत सिजलपिनिडी के 23 प्रतिशत व पैपलिओनिडी के 97 प्रतिशत सदस्यों की जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिये गाँठे बनती हैं।

जैव उर्वरक के रूप में सूक्ष्मजीव

जैव उर्वरक एक प्रकार के जीव होते हैं जो मृदा की पोषण गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। ये जीवाणु, कवक तथा सायनोबैक्टीरिया के मुख्य स्रोत होते हैं। द्विबीजपत्री (लैग्यूमिनस) पादपों की जड़ों पर स्थित ग्रंथियों का निर्माण राइजोबियम के सहजीवी सम्बन्ध द्वारा होता है। यह जीवाणु वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकृत कर इसे कार्बनिक रूप में परिवर्तित कर देते हैं जिससे पौध इसका प्रयोग पोषकों के रूप में करते हैं। अन्य जीवाणु (जैसे एजोटोबैक्टर तथा ऐजोस्पाइरिलम) मृदा में स्वतंत्र अवस्था में रहते हैं। यह भी वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिर कर सकते हैं। इस प्रकार मृदा में नाइट्रोजन अवयव बढ़ जाते हैं।

लाभकारी कवक (जैसे माइकोराइजा) पौधों के साथ सहजीवी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। ग्लोमस जीनस के बहुत से वंश माइकोराइजा बनाते हैं। इस सहजीवन में कवकीय सहजीवी मृदा से फास्फोरस का अवशोषण कर उसे पादपों में भेज देते हैं। ऐसे सम्बन्धों से युक्ति पौधों कई अन्य लाभ जैसे रोगजनक के प्रति प्रतिरोधकता, लवणता तथा सूखे के प्रति सहनशीलता तथा विकास करते हैं।

सायनोबैक्टीरिया स्वपोषित सूक्ष्मजीव हैं जो जलीय तथा स्थलीय वायुमण्डल में विस्तृत रूप से पाये जाते हैं। इनमें बहुत से वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकृत कर सकते हैं, जैसे–ऐनाबीना, नॉसटॉक, ऑसिलेटोरिया आदि। धान के खेत में सायनोबैक्टीरिया महत्त्वपूर्ण जैव उर्वरक की भूमिका निभाते हैं। नीलहरित शैवाल भी मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ा देते हैं, जिससे उसकी उर्वरता बढ़ जाती है।

जैव उर्वरक

फसलों में जैव उर्वरकों का इस्तेमाल करने से वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन पौधों को (अमोनिया के रूप में) सुगमता से उपलब्ध होती है तथा भूमि में पहले से मौजूद अघुलनशील फास्फोरस आदि पोषकतत्व घुलनशील अवस्था में परिवर्तित होकर पौधों को आसानी से उपलब्ध होते हैं। चूँकि सूक्ष्मजीव प्राकृतिक हैं, इसलिये इनके प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है और पर्यावरण पर विपरीत असर नहीं पड़ता। जैव उर्वरकों को रासायनिक उर्वरकों के पूरक के रूप में (ना कि विकल्प के रूप में) प्रयोग करके बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

जैव उर्वरकों के प्रकार

एजोला : एजोला टेरिडो फाइटा समूह की एक तैरती हुई फर्न

है। सामान्यतः एजोला धान के खेत या उथले पानी में उगाई जाती है। यह तेजी से बढ़ती है। एजोला की पंखुड़ियों में एनाबिना नामक नील हरित काई के जाति का एक सूक्ष्म जीव होता है जो सूर्य के प्रकाश में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करता है और हरे खाद की तरह फसल को नाइट्रोजन की पूर्ति करता है। एजोला की विशेषता यह है कि यह अनुकूल वातावरण में 5 दिनों में ही दो गुना बड़ा हो जाता है। यदि इसे पूरे वर्ष बढ़ने दिया जाये तो 300 टन से भी अधिक एजोला प्रति हेक्टेयर पैदा किया जा सकता है यानी 40 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है। एजोला में 3. 5 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा कई तरह के कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं। एजोला के उपयोग से धान की फसल में 5–15 प्रतिशत उत्पादन वृद्धि सम्भावित रहती है।

धान के खेत में इसका उपयोग सुगमता से किया जा सकता है। 2–4 इंच पानी से भरे खेत में 10 टन ताजा एजोला को रोपाई के पूर्व डाल दिया जाता है। इसके साथ इसके ऊपर 30–40 किग्रा सुपरफास्फेट का छिड़काव भी कर दिया जाता है। इसकी वृद्धि के लिये 30–35 डिग्री सेल्सियस का तापक्रम अत्यन्त अनुकूल होता है।

नीलहरित शैवालः नीलहरित शैवाल (सायनोबैक्टीरिया) एक जीवाणु होता है जो प्रकाश संश्लेषण से ऊर्जा उत्पादन करते हैं। यहाँ जीवाणु के नीले रंग के कारण इसका नाम सायनो (यूनानी अर्थ नीला) पड़ा है। सायनो बैक्टीरिया विटामिन 12 एऑक्सिन और एस्कार्बिक अम्ल स्रावित करते हैं जो धान के पौधे की वृद्धि में सहायक होते हैं।

नीलहरित शैवाल वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कर धान के फसल को आंशिक मात्रा में नाइट्रोजन की पूर्ति करता है। यह जैविक खाद नाइट्रोजन युक्त रासायनिक उर्वरक का सस्ता व सुलभ विकल्प है जो धान की फसल को न सिर्फ 25–30 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर पूर्ति करता है, बल्कि उस धान के खेत में नीलहरित काई के अवशेष से बने खाद के द्वारा उसकी गुणवत्ता व उर्वरता कायम रखने में मददगार साबित होती है।

एजोटोबैक्टर : एजोटोबैक्टर अतिसूक्ष्म हिटेरोट्रोफिक जीवाणु हैं। यह स्वतंत्र रूप से रहने वाला सूक्ष्म व वायवीय जीवाणु होते हैं जो बिना किसी सहजीवन के नाइट्रोजन का मुक्त रूप से जैविक स्थिरीकरण करते हैं। यह केवल राइजोस्फियर में पाया जाता है। राइजोप्लेन में यह गुण सामान्यतः नहीं पाया जाता है। मूल स्राव जिसमें अमीनोअम्ल, शर्करा, विटामिन्स और कार्बनिक अम्ल होते हैं, एजोटोबैक्टर के गुणन में सहायक होता है। यह नाइट्रोजन स्थिरीकरण के साथ–साथ पौधों के विकास में काम आने वाले पादप वृद्धि कारक हार्मोन (IAA एवं GA3) और कुछ एंटीबायोटिक्स का भी स्राव करते हैं। जिसका बीजों के अंकुरण पर अच्छा प्रभाव पड़ता है एवं जड़ों में होने वाली बहुत सारी बीमारियों की रोकथाम होती है। एजोटोबैक्टर सभी गैर–दलहनी फसलों में प्रयोग किया जा सकता है। जिसमें अन्न वाली फसलें, सब्जियाँ, कपास तथा गन्ना मुख्य है। सर्वप्रथम बिजेरिक ने एजोटोबैक्टर जीवाणुओं की खोज एवं उसका वर्णन किया था।

एजोस्पाइरिलमः यह भी नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला एक सूक्ष्मजीवाणु है जो गैर–दलहनी पौधों के लिये लाभकारी होता है। यह सूक्ष्मजीवाणु भी जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के साथ–साथ पादप वृद्धि कारक हार्मोंस का स्राव करते हैं जो अंकुरण से लेकर पौधे की वृद्धि तक में लाभकारी होते हैं।

फास्फेट घुलनशील सूक्ष्मजीव (पीएसएम) : यह उन सूक्ष्मजीवों का समूह है जो कि मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फेट में परिवर्तित कर उर्वरक की कार्य क्षमता को बढ़ाता है। क्षारीय मृदा में फास्फेट की उपलब्धता कम होती है। यह सूक्ष्मजीवाणु पूरी प्रक्रिया को उल्टा करने में काफी लाभकारी है। जब पीएसएम को रॉक फास्फेट के साथ उपयोग किया जाता है तो सिंगल सुपरफास्फेट की तरह फास्फेटिक उर्वरक की लगभग 50 प्रतिशत तक आवश्यकता को कम किया जा सकता है। फास्फेट को घुलनशील बनाने वाले जीवाणु का कल्चर बाजार में पीएसबी कल्चर के नाम से मिल जाता है। यह कल्चर फास्फोरस घोलने वाले जीवाणुओं का यौगिक होता है। इससे बिना प्रदूषण किये उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों बढ़ती हैं, साथ ही मृदा का स्वास्थ्य भी बढ़ जाता है। पीएसबी के प्रयोग से फास्फोरस तत्व को पौधे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। इसका प्रयोग करने से 10–20 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि होती है और साथ–ही–साथ मिट्टी में अनुपलब्ध फास्फोरस के उपलब्ध अवस्था में आ जाने से 30–40 प्रतिशत फास्फोरस उर्वरक की बचत की जा सकती है।

एसिटोबैक्टरः यह एक अनिवार्य एरोबिक, जैविक रूप से नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला सूक्ष्मजीवाणु है जो अपने मेटाबोलिक गतिविधियों के द्वारा अम्ल का स्राव करता है। सभी जैविक रूप से नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले सूक्ष्मजीवाणु नाइट्रोजिनेज नामक एन्जाइम की मदद से हवा में उपस्थित 78 प्रतिशत स्थिरीकरण सामान्य नाम एवं दाब पर मेटाबोलिक प्रक्रिया के माध्यम से करते हैं। विभिन्न तरह के जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले सूक्ष्मजीवाणुओं में ऑक्सीजन के प्रतिसंवेदनशीलता अलग–अलग होती है। एसिटोबैक्टर गन्ने की पैदावार के लिये उपयोगी है।

एक्टिनोराइजा : एक्टिनोमाइसिट्स समूह के जीवाणु जो अदलहनी वृक्ष की जड़ों में गाँठे बनाकर नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं, एक्टिनोराइजा कहलाते हैं। फ्रन्किया इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। फ्रन्किया 8 विभिन्न पादप कुलों की 280 से भी ज्यादा वृक्ष जातियों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है।

जैव उर्वरकों की प्रयोग विधि

जैविक उर्वरकों को चार विभिन्न तरीकों से खेती में प्रयोग किया जाता है–

बीज उपचार विधि : जैव उर्वरकों के प्रयोग की यह सर्वोत्तम विधि है। आधे लीटर पानी में लगभग 50 ग्राम गुड़ मिलाकर उबाल लेते हैं ठंडा होने के बाद उसमें जैव उर्वरक (200 ग्राम) को अच्छी तरह मिलाकर घोल बना लेते हैं। इस घोल को 10 किग्रा बीज पर छिड़ककर अच्छी तरह मिला लेते हैं जिससे प्रत्येक बीज पर इसकी परत चढ़ जाये। इसके उपरान्त बीजों को छायादार जगह में सुखा लेते हैं। उपचारित बीजों की बुवाई सूखने के तुरन्त बाद कर लेनी चाहिए।

पौध जड़ उपचार विधि : धान तथा सब्जी वाली फसलें जिनके पौधों की रोपाई की जाती है जैसे टमाटर, फूलगोभी, पत्तागोभी, प्याज इत्यादि फसलों में पौधों की जड़ों को जैव उर्वरकों द्वारा उपचार किया जाता है। इसके लिये किसी चौड़े व छिछले बर्तन में 5–7 लीटर पानी में एक किलोग्राम एजोटोबैक्टर व एक क्रिग्रा पीएसबी 250 ग्राम गुड़ के साथ मिलाकर घोल बना लेते हैं। इसके उपरान्त नर्सरी से पौधों को उखाड़कर तथा जड़ों में मिट्टी साफ करने के पश्चात 50–100 को बंडल में बाँधकर जीवाणु खाद के घोल में 10 मिनट तक डुबा देते हैं।

कन्द उपचार : गन्ना, आलू, अदरक, घुइयाँ (अरबी) जैसी फसलों में जैव उर्वरकों के प्रयोग हेतु कन्दों को उपचारित किया जाता है। एक किलोग्राम एजोटोबैक्टर व एक किग्रा पीएसबी जैव उर्वरकों को 20–30 लीटर घोल में मिला लेते हैं। इसके उपरान्त कन्दों को 10 मिनट तक डुबो देते हैं। इसके बाद तुरन्त रोपाई कर देते हैं।

मृदा उपचार विधि : 5–10 किलोग्राम जैव उर्वरक व 70–100 किग्रा मिट्टी या कम्पोस्ट का मिश्रण तैयार करके रात भर छोड़ दें। इसके बाद अन्तिम जुताई पर खेत में मिला देते हैं।

जैविक उर्वरकों के उपयोग से लाभ

1. इनके प्रयोग से उपज में लगभग 10–15 प्रतिशत की वृद्धि होती है।
2. यह रासायनिक खादों विशेष रूप से नाइट्रोजन और फास्फोरस की जरूरत का 20–25 प्रतिशत तक पूरा करते हैं।
3. इनके प्रयोग से अंकुरण शीघ्र होता है तथा कल्लों की संख्या में वृद्धि होती है।
4. जमीन की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं।
5. इनके प्रयोग से गन्ने में शर्करा की, मक्का व आलू में स्टार्च तथा तिलहनों में तेल की मात्रा में वृद्धि होती है।

जैविक उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियाँ

1. जैव उर्वरक को छाया में सूखे स्थान पर रखें।
2. फसल के अनुसार ही जैव उर्वरक का चुनाव करें।
3. उचित मात्रा का प्रयोग करें।
4. जैव उर्वरक खरीदते समय उर्वरक का नाम बनाने की तिथि व फसल कानाम इत्यादि ध्यान से देख लें।
5. जैव उर्वरक का प्रयोग समाप्ति की तिथि के पश्चात न करें।

जंगली धान के पौषणिक और रासायनिक गुणों का विवेचनात्मक विवरण

सुप्रिया प्रियदर्शिनी, पी संघमित्रा, गौरव कुमार, नबनीता बसाक

परिचय

साधारणतया जंगली धान को श्मैनोमिन या अच्छी बेरी' कहते हैं एवं इसकी की चार प्रजातियाँ पाई जाती है जैसे कि जिजानिया लातीफोलिया, जिजानिया पालूस्ट्रीस, जिजानिया एक्वाटिका और जिजानिया टेक्साना जो मूलतः उत्तरी अमेरिका और चीन के हैं। अब पूर्वी एशिया और विश्व के अन्य भागों में इस फसल की खेती बड़े पैमान पर की जाती है। लेकिन यह सीधे तौर पर खेती किए जाने वाले धान अर्थात ओराइजा साटिवा से संबंधित नहीं है, लेकिन ओराइजा और पोआसी परिवार के करीबी रिश्तेदार हैं। ये बारहमासी जलीय पौधे हैं जो प्राकृतिक रूप से कम गहराई वाले झीलों या धीमी गति से बहने वाली नदियों के पास उगते हैं और प्रागैतिहासिक काल से मानव द्वारा उपयोग में लाए जा रहे हैं। वर्ष 1965 के दौरान की धान की इस प्रजाति की खेती करना शुरू किया गया और एक व्यवस्थित तरीके से इसके उत्पादन का व्यवसायीकरण शुरू हुआ था।

जंगली धान की संरचना

रासायनिक संरचना के संबंध में, जंगली धान कई पहलुओं में अधिकांशतः साधारण अनाज की तरह दिखता है। जंगली धान की संरचना की तुलना सामान्य धान, ब्रेड गेहूं, मक्का, और जई के साथ तालिका 1 में की गई है। तालिका से, यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अन्य अनाज (एक या अधिक) की तरह जंगली धान में प्रोटीन, वसा, राख, कच्चे फाइबर और कुल कार्बोहाइड्रेट की विशेषताएं हैं। जौ को छोड़कर सभी आम तौर पर खाये जाने वाले अनाजों में प्रोटीन की मात्रा सबसे अधिक पाई जाती है। जंगली धान के प्रसंस्कृत उत्पादों में वसा की मात्रा अन्य अनाज की तुलना में अपेक्षाकृत कम होती है जो आज के उपभोक्ताओं को बहुत पसंद है। जहां तक बुनियादी संरचना का संबंध है, तालिका में उल्लिखित प्रत्येक सूचना के अनुसार यह स्पष्ट है कि जंगली धान एक उत्कृष्ट भोजन है तथा वर्तमान समय में इस्तेमाल होने वाले आम अनाज के लिए पोषक तत्वों के मूल्य में तुलनीय है।

तालिका 1 : जंगली धान बनाम अन्य अनाज की संरचना का तुलनात्मक मूल्यांकन

घटक (%)	जंगली धान	भूरा धान	पॉलिश सफेद चावल	जौ	गेहूं	मक्का
नमी	7.9-11.2	12.0	12.0	8.3	12.5	13.8
प्रोटीन	12.4-15.0	7.5	6.7	14.2	12.3	8.9
वसा	0.5- 0.8	1.9	0.4	7.4	1.8	3.9
राख	1.2- 1.4	1.2	0.5	1.9	1.7	1.2
कच्चे फाइबर	0.6-1.1	0.9	0.3	1.2	2.3	2.0
कुल कार्बोहाइड्रेट	72.3-75.3	77.4	80.4	68.2	71.7	72.2

पोषण और फाइटोकेमिकल गुण

जंगली धान के दाने एवं बीज बड़े होते हैं, इसकी बाहरी आच्छद खाने योग्य है लेकिन अंदर के दाने कोमल हैं, स्वाद थोड़ा–सा वानस्पतिक होते है तथा जिसे मुख्य खाद्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसे अब उत्तरी अमेरिका में स्वादिष्ट धान के रूप में पसंद किया जाता है, जबकि चीन में इसके तने को सब्जी के रूप में सेवन किया जाता है। जंगली धान को कम वसा वाला, खनिज, विटामिन, प्रोटीन, स्टार्च, आहार फाइबर और विभिन्न एंटीऑक्सिडेंट होने, फाइटोकेमिकल्स मौजूद होने के कारण स्वास्थ्यवर्धक भोजन के रूप में पाया गया है। जंगली धान की पोषण संबंधी जानकारी तालिका 2 में प्रस्तुत की गई है जिससे यह स्पष्ट होता है कि जंगली धान विटामिन और खनिजों का एक समृद्ध स्रोत है और इसे मुख्य भोजन के रूप में खाया जा सकता है।

तालिका 2: पकाए गए जंगली चावल की पोषण संबंधी जानकारी

ऊर्जा–101 किलो कैलोरी	मात्रा	खनिज तत्व	मात्रा
कार्बोहाइड्रेट	21.34 ग्राम	कैल्शियम	3 मिलीग्राम
आहार फाइबर	1.8 ग्राम	तांबा	0.121 मिलीग्राम (5%)
वसा	0.34 ग्राम	लोहा	0.6 मिलीग्राम (5.0%)
प्रोटीन	3.99 ग्राम	मैग्नीशियम	मिलीग्राम (%)
विटामिन–ल्यूटिन जिजानथीन	64 µg	मैंगनीज	0.282 मिलीग्राम (13.0%)
थायमिन (बी 1)	0.052 मिलीग्राम (5%)	फास्फोरस	82 मिलीग्राम (12%)
राइबोफ्लेविन (बी 2)	0.087 मिलीग्राम (7%)	पोटैशियम	101 मिलीग्राम (2.0%)
नियासिन (बी 3)	1.287 मिलीग्राम (9%)	सोडियम	3 मिलीग्राम
विटामिन बी 6	0.135 मिलीग्राम (10%)	जस्ता	1.34 मिलीग्राम (14%)
फोलेट (बी 9)	26 µg (7%)		
विटामिन ई	0.24 मिलीग्राम (2%)		

पारंपरिक सफेद चावल की तुलना में जंगली धान में धीरे–धीरे पचने योग्य स्टार्च, प्रतिरोध स्टार्च और तेजी से पचने वाले स्टार्च के उच्च स्तर होते हैं। पारंपरिक चावल से रोज प्राप्त होने वाले दैनिक मूल्य की अपेक्षा एक कप पका हुआ जंगली चावल से थायमिन, राइबोफ्लेविन, लोहा और पोटेशियम के दैनिक मूल्य का 5 प्रतिशत या अधिक मात्रा, नियासिन, विटामिन बी 6, फोलेट, मैग्नीशियम, फास्फोरस के दैनिक मूल्य का 10 प्रतिशत अधिक एवं जस्ता का 5 प्रतिशत अधिक और 20 प्रतिशत से अधिक मैंगनीज मिलता है। इसके अलावा इसमें फेनोलिक मिश्रणों, फ्लेवोनोइड्स, फाइटोस्टेरोल, ओराइजनल, एमिनोब्यूट्रिक एसिड और साइनैपिक एसिड का एक समृद्ध स्रोत है। इसके अतिरिक्ता एशियाई जंगली धान की किस्म (जिजानिया लातीफोलियां) के तने में उच्च मात्रा में एस्कॉर्बिक एसिड और प्रोटीन होते हैं। यह भी पता चला है कि इसमें कैंसर प्रतिरोधी कंपाउंड 'माकोमोटिनडोलाइन' है और ओस्टेक्लास्ट बनाने वाला कंप्रेसिव कंपाउंड है जिसका नाम हेक्साडेसिल 3, 5–डिटर्ट–ब्यूटाइल–4–हाइड्रॉक्सी बेंजोएट' है जो हड्डी के स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करता है।

जंगली चावल जो कि पोषण से समृद्ध है, उसके निम्नलिखित स्वास्थ्य लाभ हैं।

पाचनशीलता

आहार फाइबर के साथ यह समृद्धि कोलेस्ट्रॉल के संतुलन को बेहतर बनाने में सहायता करता है जिससे पाचन प्रक्रिया में मदद मिलती है। यह कब्ज, दस्त, सूजन, ऐंठन, कोलोरेक्टल कैंसर, गैस्ट्रिकरुपी अल्सर, और रक्तस्रावी अतिरिक्त पेट फूलना क्रमाकुंचन को भी दूर करता है।

प्रतिरक्षा को बढ़ाता है

जंगली चावल में विटामिन सी की मात्रा मौजूद है जो कि महत्वपूर्ण है एवं इससे सफेद रक्त कोशिकाओं के उत्पादन में मदद मिलती है, जो कि शरीर की बाह्य रोगजनकों और रोगाणुओं के खिलाफ रक्षा करता है। इसके अतिरिक्त, विटामिन सी जो कि कोलेजन का महत्वपूर्ण अंग है तथा कोशिकाओं, अंगों, ऊतकों और रक्त वाहिकाओं की दीवारों के निर्माण और मरम्मत के लिए आवश्यक है जो हमें बीमारियों से उबरने में मदद करते हैं।

विकास में बढ़ोत्तरी

मानव शरीर में प्रोटीन मांसपेशियों में वृद्धि, उचित और संतुलित विकास में मदद करता है। जंगली चावल में उच्च प्रोटीन मात्रा समग्र स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

हड्डियों को मजबूती प्रदान करता है

जंगली चावल फॉस्फोरस और जस्ता से समृद्ध है एवं इससे ऑस्टियोपोरोसिस होने का खतरा कम रहता है क्योंकि ये खनिज अस्थि के खनिज घनत्व को बनाए रखता है जो कि उम्र बढ़ने के साथ हड्डियों और जोड़ों को मजबूत करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

जन्म दोषों में सुधार

जंगली चावल में विटामिन बी 6 सहित विटामिन के महत्वपूर्ण स्तर नवजात शिशुओं में तंत्रिका ट्यूब दोष को कम करने के लिए सफल पाए गए हैं।

वजन कम करता है

चूंकि जंगली धान कम कैलोरी और वसा मुक्त होने के साथ फाइबर में उच्च होते हैं और अधिक वजन को रोकते हैं जिससे वजन बनाए रखने में सफलता मिलती है।

पुरानी गंभीर बीमारी, उम्र बढ़ने की प्रक्रिया और बढ़ती उम्र में आंखों की कमजारी को रोकता है

जंगली चावल में मौजूद एंटीऑक्सिडेंट की मुक्त कण हृदय संबंधी विकारों, मधुमेह और यहां तक कि कुछ प्रकार के कैंसर एवं पुरानी बीमारियों की संभावना को कम करने के लिए पाया गया है। इसके अलावा ये एंटीऑक्सिडेंट उम्र बढ़ने के संकेतों जैसे कि झुर्रियाँ, उम्र के धब्बे को कम करते हैं और बढ़ती उम्र में आंखों की कमजारी को रोकते हैं।

स्वस्थ हृदय कायम रखता है

जंगली चावल में नमक की मात्रा नहीं होती है, जो रक्तचाप को कम करने में मदद करता है। फाइबर से समृद्ध होने के कारण हृदय प्रणाली से "खराब" कोलेस्ट्रॉल को साफ करता है और एथेरोस्क्लेरोसिस के विकास की संभावना कम होती है। इस प्रकार जंगली चावल में मौजूद विटामिन सी के उच्च स्तर से हृदय पर खिंचाव का उन्मूलन होता है, मरम्मत और क्षति नियंत्रण को बढ़ावा मिलता है जिससे हृदय की रक्षा होती है।

ग्लुटिनस मुक्त आहार लेने वालों के लिए सुपर फूड

जंगली चावल को ग्लूटेन मुक्त आहार के रूप में एक सुपर खाद्य पदार्थ माना जाता है क्योंकि यह शरीर की दैनिक पोषण आवश्यकता को पूरा करता है।

खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में जंगली धान का उपयोग

जंगली चावल से तैयार चिवड़ा में मौजूद विटामिन बी यौगिकों और टोकोफेरॉल तथा 44 खनिजों की सांद्रता एवं ट्रेस तत्वों का पता लगाने के उद्देश्य से एक अध्ययन किया गया था और अनुशंसित आहार और आहार सेवन के लिए उनके उचित योगदान का मूल्यांकन किया गया था (समजिनस्की एट अल 2018) जिसमें यह पाया गया कि जंगली चावल के चिवड़ों में पाइरिडोक्सिन, पैंटोथेनिक फोलिक एसिड, नियासिन और थियामिन जैसे महत्वपूर्ण विटामिन तत्व होते हैं। इसके अलावा, जंगली चावल में आवश्यक अमीनो एसिड, फाइटोकेमिकल्स का एक भंडार है, इसलिए इसका कैसरोल, सूप, सलाद और डेसर्ट जैसे विभिन्न खाद्य पदार्थों पर ड्रेसिंग के रूप में सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। विदेशी व्यंजनों में इसके अनूठे स्वाद के लिए इसे एक स्वादिष्ट भोजन के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। हाल के वर्षों में, नाश्ते वाले अनाजों में जंगली चावल का उपयोग किया जा रहा है, और पेनकेक्स, मफिन और कुकीज के लिए प्रयोग होता है। जंगली चावल और लंबे दाने वाले सामान्य चावल (ओराइजा) के मिश्रणों ने उपभोक्ताओं में जंगली चावल की लोकप्रियता में वृद्धि की है।

उपसंहार

जंगली चावल में मौजूद एंटीऑक्सिडेंट गुण और स्वास्थ्य–संवर्धन प्रभावों के कारण संसार भर में इसके प्रति लोग आकर्षित हुए हैं। जैसा कि ऊपर संक्षेप में कहा गया है, कि स्टेरॉल्स (फाइटोस्टेरोल और ओराइजनल), एमिनोब्यूट्रिक एसिड और फेनोलिक कंपाउंड (फेनोलिक एसिड और फ्लेवोनोइड्स) जंगली चावल में मुख्य फाइटोकेमिकल्स हैं। जंगली चावल में फाइटोकेमिकल सामग्री एक कार्यात्मक भोजन के रूप में इसका विकास करती है। जिजानिया जाति के पौधों में फेनोलिक एसिड, फ्लेवोनोइड्स और अन्य फाइटोकेमिकल्स के एंटीऑक्सिडेंट गुण पाए गए हैं, जो पुरानी बीमारी की रोकथाम से जुड़ा है। वर्तमान समाज में एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर और कम वसा वाली खाद्य पदार्थ के प्रति बहुत रुचि बढ़ा है। निकट भविष्य में जंगली चावल एक प्रधान खाद्य के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होगी। जंगली चावल से इष्टतम गुणवत्ता वाले मूल्य वर्धित उत्पाद प्राप्त करने हेतु इसके प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों के मानकीकरण के साथ–साथ जंगली चावल के एंटीऑक्सिडेंट गुणों को अनुसंधान द्वारा सुदृढ़ करने की जरुरत है।

योग हमें उन चीजों को ठीक करना सीखाता है जिन्हें सहा नही जा सकता और उन चीजों को सहना सीखाता है जिन्हें ठीक नहीं किया जा सकता।

योग गुरु बी के एस अयंगर

संस्थान को प्राप्त पुरस्कार और मान्यताएं

क्रमांक	शीर्षक	वर्ष
1	भाकृअनुप–एनआरआरआई, कटक को संस्थान की वार्षिक राजभाषा पत्रिका ''धान'' के लिए प्रतिष्ठित ''गणेश शंकर विद्यार्थी हिंदी पत्रिका पुरस्कार'' वर्ष 2018–19 के लिए द्वितीय पुरस्कार मिला।	2020
2	भाकृअनुप–एनआरआरआई, कटक को कटक को बड़े संस्थानों के श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ वार्षिक पुरस्कार 2016–17'' के तहत 'श्रेष्ठ वार्षिक प्रतिवेदन पुरस्कार मिला।	2018
3	भाकृअनुप–एनआरआरआई,, कटक को संस्थान की वार्षिक राजभाषा पत्रिका ''धान'' के लिए प्रतिष्ठित ''गणेश शंकर विद्यार्थी हिंदी पत्रिका पुरस्कार'' वर्ष 2015–16 के लिए द्वितीय पुरस्कार मिला।	2017
4	भाकृअनुप–एनआरआरआई,, कटक को कटक शहर में स्थित सभी केंद्रीय सरकार कार्यालयों के बीच राजभाषा के पूर्ण कार्यान्वयन और निष्पादन के लिए नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नराकास) द्वारा वर्ष 2015–16 के लिए सर्वश्रेष्ठ संस्थान के रूप में राजभाषा शील्ड से सम्मानित किया गया।	2016
5	भाकृअनुप–एनआरआरआई,, कटक को राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली द्वारा हरित क्रांति की स्वर्ण जयंती समारोह–2015 में हरित क्रांति में नेतृत्व की भूमिका के लिए मान्याता दी गई एवं सम्मानित किया गया।	2015
6	भाकृअनुप–एनआरआरआई, कटक को देश में चावल की खेती में नेतृत्व विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान की मान्यता में ''लोकमत राष्ट्रीय शिक्षा नेतृत्व पुरस्कार'' से सम्मानित किया गया।	2015
7	भाकृअनुप–एनआरआरआई, कटक को ''एनआईसीआरए के तहत सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाला संस्थान'' घोषित किया गया।	2015
8	सीआरआरआई, कटक ने जी न्यूज की साझेदारी में महिंद्रा एंड महिंद्रा लिमिटेड द्वारा स्थापित महिंद्रा समृद्धि इंडिया एग्री अवार्ड्स का ''कृषि संस्थान सम्मान 2013'' प्राप्त किया।	2013
9	सीआरआरआई, कटक को टाइम्स ऑफ इंडिया और टेफला द्वारा ''एजुकेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एक्सीलेंस 2011 के लिए ओडिशा लीडरशिप अवार्ड'' से सम्मानित किया गया	2011
10	सीआरआरआई, कटक को "कृषि अनुसंधान और विस्तार के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए सरदार पटेल उत्कृष्ट आईसीएआर संस्थान पुरस्कार 2008" से सम्मानित किया गया।	2009

91st Foundati
Award Cere
&
Innovative Farme

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा आयोजित खेलकूद प्रतियोगिताओं में संस्थान की उपलब्धियां

क्रमांक	शीर्षक
1	भाकृअनुप–एनआरआरआई,, कटक को 5 से 8 अक्टूबर, 2018 के दौरान आईआईएनआरजी, रांची में पूर्वी क्षेत्र के लिए आयोजित भाकृअनुप जोनल टूर्नामेंट चैंपियन से सम्मानित किया गया।
2	भाकृअनुप–एनआरआरआई,, कटक को 13 से 16 नवंबर 2017 के दौरान आईसीएआर–आरसीईआर द्वारा पाटलिपुत्र स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स, पटना में आयोजित पूर्वी क्षेत्र के लिए आईसीएआर जोनल टूर्नामेंट चैंपियन से सम्मानित किया गया।
3	भाकृअनुप–एनआरआरआई,, कटक को 6 से 9 मार्च 2017 के दौरान एनआरआरआई, कटक में आयोजित आईसीएआर पूर्व क्षेत्र खेल टूर्नामेंट में ओवरऑल चैंम्पियनशिप ट्रॉफी से सम्मानित किया गया।
4	भाकृअनुप–एनआरआरआई,, कटक को 28 से 31 अक्टूबर 2015 के दौरान आईवीआरआई, इज्जतनगर में आयोजित आईसीएआर पूर्व क्षेत्र खेल टूर्नामेंट में ओवरऑल चैंम्पियनशिप ट्रॉफी से सम्मानित किया गया।
5	सीआरआरआई , कटक को सीआरआरआई ,कटक में 18 से 22 अक्टूबर 2013 के दौरान आयोजित पूर्वी क्षेत्र खेलकूद प्रतियोगिता में ओवरऑल चैंम्पियनशिप ट्रॉफी से सम्मानित किया गया।
6	सीआरआरआई, कटक को 19 से 22 मार्च 2012 के दौरान पटना में आयोजित आईसीएआर पूर्वी क्षेत्र खेल टूर्नामेंट में 105 स्कोर मिला जो कि पूर्वी क्षेत्र के लिए एक रिकार्ड है।
7	सीआरआरआई, कटक को 17 से 20 दिसंबर 2013 के दौरान नार्म, हैदराबाद में आयोजित आईसीएआर अंतराक्षेत्रीय खेल टूर्नामेंट में चौथी बार चैंम्पियनशिप ट्रॉफी से सम्मानित किया गया।
8	सीआरआरआई, कटक को 16 से 19 जनवरी 2012 के दौरान सीआरईजेएएफ, बैराकपुर में आयोजित आईसीएआर अंतराक्षेत्रीय खेल टूर्नामेंट में तीसारी बार चैंम्पियनशिप ट्रॉफी से सम्मानित किया गया।
9	सीआरआरआई, कटक को 7 से 11 अप्रैल 2011 के दौरान भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर में आयोजित आईसीएआर पूर्वीक्षेत्रीय खेल टूर्नामेंट में चैंम्पियनशिप ट्रॉफी से सम्मानित किया गया।

10	सीआरआरआई, कटक को 1 से 5 फरवरी 2010 के दौरान सीआरआरआई ,कटक में आयोजित पूर्वी क्षेत्र खेलकूद प्रतियोगिता में ओवरऑल चैंम्पियनशिप ट्रॉफी से सम्मानित किया गया।
11	सीआरआरआई, कटक को 12 से 15 दिसंबर 2009 के दौरान एनडीआरआई, करनाल में आयोजित आईसीएआर अंतराक्षेत्रीय फाइनल खेल टूर्नामेंट में द्वितीय स्थान मिला।
12	सीआरआरआई, कटक ने 28 से 31 मई 2009 के दौरान भुवनेश्वर में आयोजित 57वां वरिष्ठ कबड्डी चैंपियनशिप में ओडिशा पुलिस कबड्डी दल को पराजित करके जीत हासिल की।
13	सीआरआरआई, कटक को 29 जनवरी से 2 फरवरी 2009 के दौरान ईसीएआर रिसर्च कॉम्प्लेक्स फॉर ईर्स्टन रिजन, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय परिसर, पटना में आयोजित आईसीएआर जोनल स्पोर्ट्स टूर्नामेंट में आईसीएआर ओवरऑल संस्थान चैंपियनशिप ट्रॉफी मिला।
14	सीआरआरआई, कटक को 17 से 20 नवंबर 2008 के दौरान हैदराबाद में आईसीएआर इंटरजोनल स्पोर्ट्स टूर्नामेंट में संयुक्त रूप से एनडीआरआई, करनाल के साथ आईसीएआर ओवरऑल टीम चैंपियनशिप ट्रॉफी मिला।
15	सीआरआरआई, कटक ने 24 अगस्त 2008 के दौरान भुवनेश्वर में आयोजित 56वां वरिष्ठ कबड्डी चैंपियनशिप में ओडिशा पुलिस कबड्डी दल को पराजित करके जीत हासिल की।

विगत वर्षों में गणमान्य एवं विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा संस्थान की संरचनागत सुविधाओं एवं ओराइजा संग्रहालय के परिदर्शन पश्चात् आगंतुक पुस्तक में लिखी गई कुछ टिप्पणियां

Visited this Central Rice Research Institute. I was taken round by Dr. Ramiah, the Director through several Divisions, each of which gives the picture of the interesting research work done here. I am sure that the Institute will produce results justifying its existence.

August 7th 1951

P. S. Kumaraswamy Raja
Chief Minister, Madras

I have learnt good many things by visiting this Institute which I believe is the most important centre of research in the world and I congratulate the Director Dr. Parthasarthy and his colleagues on running it so well and efficiently. It is and Institute to be fostered and encouraged and I hopte it will continue to receive the attention it deserves from our Government and the FAO and other organizations interested in the food problems of the world.

November 7th 1952

Asaf Ali
Governer of Orissa

The investigations carried out at Central Rice Research Institute are of immense importance as the problem of rice production is concerned with food supply of a huge proportion for a huge population. The way in which this problem is tackled from all its essential aspects and from the very fundamentals is highly admirable. Warmest congratulations to the achievements already made and very wishes for even greater success in the time to come.

February 6th 1956

Lui Cheng Lo
Professor, Entomology,
Academicia Science, Peking, China

Through the kindness and courtesy of the Director, Dr.R. Richharia, I had the opportunity of visiting the Institute at Cuttack. The Institute, only one of its kind in India, may even in Eastern Asia has made rapid progress during the recent years. A devoted band of scientists under the Direction of Dr.Richharia are making valuable contribution not only in the fundamental aspects of important crop plant, rice but also on the agronomic aspects. I have the honour to meet eminent research workers. I am grateful to Dr.Richharia for acquinting me with their various fields of research.

November 20th 1965

Dr. P. Parija
Vice Chancellor, Utkal University

मैंने इस संस्थान में धान संबंधित अनुसंधान कार्य देखा, बहुत ही उत्साहवर्धक है। मैं इसकी सफलता की कामना करता हूँ।

7 अगस्त 1982

टी एस नेगी, सांसद

मैंने आज इस अनुसंधान संस्थान के कार्य को देखा। संस्थान के वैज्ञानिक बड़े लगन से अनुसंधान कार्य जो कि हमारे धान की संकर उपज को बढ़ाने, उसमें लगने वाली बीमारियों आदि के रोकथाम तथा किसानों के लिए रही खाद का धान में उपयोग के सरल तरीके की खोज कर न सिर्फ उड़ीसा तथा आस–पास के धान उत्पादक प्रदेश के किसानों की ही सेवा कर रही है बल्कि यह संस्थान भारत के साथ–साथ धान उगाने वाले देशों की सेवा करने का भरसक प्रयत्न कर रही है। मैं इस संस्थान एवं इसमें कार्यरत वैज्ञानिकों की सफलता की कामना करता हूँ।

31 दिसंबर 1983

शिव भानू सोलंकी
उप मुख्य मंत्री, मध्य प्रदेश

I am happy to visit the Central Rice Research Institute which is doing valuable work research work in augumenting the production of rice both qualitatively and quantitatively.

September 9th 1986

B. N. Pande
Governer of Orissa

We are very delighted and very happy to visit the Central Rice Research Institute, Cuttack. We avail this opportunity to thank you for the cooperation which express the hospitality and friendship of the Indian people towards the Vietnamese people. We welcome the achievement recorded by you through the last few years. May the friendship and cooperation between the two country develop.

January 6th 1986

Ngyen Ngoc Triu
Minister of Agriculture, Vietnam

I came here to update my knowledge and learn what should be our strategy in enchancing our production and productivity in rice particularly in eastern India. It has been quite rewarding for me to see that the scientists through a multi-disciplinary approach have develop varieties which are suitable for varying agri-climatic zones. I wish that the God may grant all the blessings to this great Institute that is needed to serve the poor farmers of the region.

S.S. Khanna 3/3/91

March 3rd 1991

S.S. Khanna
Agriculture Advisor
Planning Commission, Govt of India

कार्य प्रशंसनीय, सराहनीय एवं अनुकरणीय है। वैज्ञानिक अपने अनुसंधान में निष्ठा के साथ लगे हुए हैं। सफलता की कामना करता हूँ। ईश्वर दिशा एवं दृष्टि सही रखे।

31 मार्च 2000

हुकुम देव नारायण यादव
केंद्रीय कृषि राज्य मंत्री, भारत सरकार

The scientists of Central Rice Research Institute are doing quite good job for improvement of the rural economy.

June 20th 2000

Dr. Debendra Pradhan
Mos (Agriculture) Govt of India

I am really delighted to learn that many problems of agricultural production including increase of productivity and insecticide programmes under IPM have bben taken up for research. I appreciate your efforts in quick dissemination of the technological inventions in the field through the cultivators who are the real messengers of the scientific developments for overall societal development. I hope the Institute will come to greater use of the State and its food suppliers i.e. the cultivators.

April 23rd 2001

R.K. Patnaik
Minister of Finance, Govt. of Orissa

I visited the Central Rice Research Institute at Cuttack and was very much impressed about the work going on in Integrated Farming System under irrigated and rainfed agro-ecosystems. The system encompasses rice, fish, fruits, vegetables, honeybees, mushrooms, ducks, coconut, aracanut, maize etc which can maintain amarginal family and also employment generation to the family. This is very good farming system which already being adopted by the Government of Orissa. I take this opportunity to which Dr. B.N Singh, the Director and his team of dedicated scientists all the best in their future endeavours.

April 4th 2002

P.P. Reddy
Director, IIHR, Bangalore

My visit to the CRRI has been extremely fruitful. The excellent work being done by the scientists needs to be given wide publicity. The Director, Dr. M. P Pandey's vision of the development would definitely lead to making this institution one of the top most institutes in the world. My best wishes in this endeavour.

September 27th 2007

Dr. S. D. Sharma
Director, IASRI, New Delhi

It is very educative to visit this excellent Institute, CRRI. The scientists are very proud and determined in showing their achievements and future plans. One hopes, the farmers of this country will keep on getting benefits from the research activities taken up by this institute. I wish CRRI all success.

November 11th 2008

M. Akhaya, IPS
IG, Vigilance, Orissa

Asian Development Bank is very impressed by the dedicated efforts of CRRI in working towards food security in this region. In particular the contribution of individuals and their painstaking work in developing improved breeds is commendable. We look forward to continued collaborations in poverty reduction in South Asia.

January 29th 2010

Yasmin Siddiq
Water Resources Specialist,
ADB, Manila

I was impressed with this rice museum which houses all that farmers, students and young scientists can learn about what this country has developed through science in rice. I feel that the museum should showcase more on rice and our culture and civilization.

October 26th 2009

E.A. Siddiq
Hon. Prof. Biotech, ANGRAU

Congratulations for an excellent museum on rice. It is very well planned, created. It is informative, educative with high value information for all groups, farmers, students, researchers and entrepreneurs.

October 10th 2009

M.M. Pandey
Deputy Director General (Engg.), ICAR

Feel good rice museum with so much of information, historical, cultural and science based just to say "Excellent". Thought well, designed well and placed well. Glad to see that and also maintained well. Next time, I will visit this museum, I would have the same feel and feelings and would lile to listen with classical Indian music and see further prosperous of this institute, rice institute of national importance.

October 8th 2010

Dr. Swapan K. Dutta
Deputy Director General
(Crop Science), ICAR

एनआरआरआई में विगत वर्षों के दौरान विभिन्न अवसरों पर परिदर्शन हेतु पधारे गणमान्य व्यक्तियों एवं महानुभावों से जुड़ी कुछ फोटो स्मृतियां

FOUNDATION DAY CELEBRATION
April 23, 2010

and Strategies

DAY CELEBRATION

क्षेत्रीय कृषि मेला
REGIONAL AGRICULTURE FAIR

PRODUCTION TECHNOLOGY

REVIEW MEETING O
ACTIVITIES IN EASTE

ICAR

कृषि शिक्षा दिवस

NEPAL
PAKISTAN
SRI LANKA

एनआरआरआई में नवनिर्मित जैवप्रौद्योगिकी भवन, आधुनिक प्रयोगशालाएं, नेट हाउस, जीन बैंक, सम्मेलन कक्ष, संरचनागत सुविधाएं

CLIMATE CONTROLLED
GREEN HOUSE

एनआरआरआई में आयोजित बैठकें, कार्यशालाएं, दिवस, वैज्ञानिक–किसान विचार–विनिमय कार्यक्रम

WORLD FOOD DAY

NRRI

भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान
कटक: 753006ए, ओडिशा
फोन: 91-671-2367757, Fax: 91-671-2367663
ईमेल: director.nrri@icar.gov.in | directorcrricuttack@gmail.com
वेबसाइट: http://www.icar-nrri.in

BSCIC NABCB QM 030 ISO 9001 REGISTERED BN10448/9364:0914

An ISO 9001 : 2015 Certified Institute